समय का सच

(काव्य संग्रह)

समय का सच

(काव्य संग्रह)

सन्तोष खन्ना
पूर्व सदस्य, जिला उपभोक्ता फोरम
राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र, दिल्ली सरकार

विधि भारती परिषद्
बी.एच-48, (पूर्वी) शालीमार बाग
नई दिल्ली-110088

समय का सच (काव्य संग्रह)
सन्तोष खन्ना

ISBN : 978-93-80259-15-4
EAN : 9789380259154

© **विधि भारती परिषद्**

प्रकाशक

विधि भारती परिषद्
बी.एच-48 (पूर्वी), शालीमार बाग, दिल्ली-110088
फोन : (011)-2749-1549, 9899651272, 9899651872
E-mail : vidhibharatiparishad@hotmail.com

प्रथम संस्करण : 2017

मूल्य : 250/– रुपए

मुद्रक : अर्चना प्रिंटर्स
1/1955, गली नं. 22-ए,
मॉडर्न शाहदरा, ईस्ट राम नगर
शाहदरा, दिल्ली-110032
मोबाइल : 9811357243, 011-22135900
E-mail : archanaprinter2009@gmail.com

Samay Ka Sach (Poems) *by* **Santosh Khanna**

अनुक्रम

दो शब्द / 7
वंदना / 11
कुछ नया रच / 12
कविता / 14
शब्द / 16
हाशिये पर कविता / 18
अभिव्यक्ति / 20
मैं झीनी-सी बुनावट / 22
दामिनी अभी जिंदा है / 24
आस्था / 25
कब आओगे? / 26
अंतरिक्ष / 27
यमुना, एक मरणासन्न नदी / 28
याद तेरी अमलतास / 30
नीलकंठ / 31
भारत मेरा महान् / 32
परिवर्तन / 34
पायदान / 35
गाड़ी / 36
हादसे / 37
आम आदमी का नार्को टेस्ट / 38
इतिहास में औरतें / 42
अधिकार / 45
कसौटी / 46
अहम् / 48
ख़बर / 50
वह टाँकती बटन / 52
मैं / 54
सड़क / 55
अब के साल... / 56
सागर में लहरें उठाता है कौन? / 59
चिड़िया / 60
मेरे बच्चे / 63
कौन हूँ मैं? / 64
अपने से पहचान कर लो / 65
तलाश / 66
सच्चाई की जीत / 67
वर्षा में नदी / 68
आईना / 70
पुकार / 72
हनन / 74
तूफान रुकने के बाद / 75
ज्योति पर्व / 76
मज़दूर / 77
मजबूरी / 78
समझ / 79
इनसान हैं हम / 80
चिलचिलाती गर्मी के बाद / 81
अमरता / 82
ओ मेरे मन / 83

पेड़ / 84
मेरा पेड़ / 85
बेटियाँ / 86
छू लूँगी मैं आकाश / 87
स्त्री का वर्तमान / 88
स्त्री / 89
सलोनी नार / 90
नारी मुक्ति / 91
कवि / 92
ख़ुशी / 93
शत-शत प्रणाम, ओ अंदेमान / 94
कहर / 96
आत्मा का फूल / 97
इतिहास / 98
महाभियोग / 100
जीवन चक्र / 101
गाँधीवादी बनाम क्रांतिवादी / 102
सरहदें / 105
स्लमडॉग? / 106
धुआँ ही धुआँ / 108
कृष्णावतार / 109
अनुवाद / 110
आँसू / 112
अग्नि परीक्षा / 113
काव्यानुवाद : सुहाना सफ़र / 114
ख़ुशी / 115
सोने से पहले / 116
प्यार / 118
सच / 120
हिंदी / 121
परचम / 122
आशा / 123
विस्तार / 124
अहम् / 125
हाइकू / 126
आज फिर / 128

दो शब्द

'समय का सच' मेरा तीसरा काव्य संग्रह है। इससे पहले 'साक्षी' (1991) और 'भावी कविता' (2003) मेरे दो काव्य संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं।

'समय का सच' काव्य संग्रह में मेरी वह कविताएँ शामिल हैं जो लगभग पिछले दो दशकों में रची गई हैं और इनमें से काफी कविताएँ पत्र-पत्रिकाओं और कुछ काव्य संग्रहों में प्रकाशित हो चुकी हैं। चूँकि अधिकांश कविताएँ 21वीं शती के कालखंड की परिस्थितियों और परिवेश की साक्षी हैं, इनमें उसकी गूँज अवश्य सुनाई देगी। इन कविताओं का मूल्यांकन मैं अपने सुधि पाठकों पर छोड़ती हूँ क्योंकि मतभेद के बावजूद मेरा यह मानना है कि हमारा लेखन अपने लिए होते हुए भी उसकी धुरी में पाठक ही रहता है अतः कविता का निकष पाठक होता है।

जहाँ तक 21वीं शती की कविता के तेवर और कलेवर का संबंध है तो अब यह निर्विवाद हो चला है कि पिछले दो दशकों की कविता का फलक काफी विस्तृत और विभिन्नता लिए है। प्रौद्योगिकी के विकास के कारण हर वर्ष काफी संख्या में काव्य संग्रह प्रकाशित हो रहे हैं और पूरे देश में पत्र-पत्रिकाओं में भी कविताएँ प्रकाशित हो रही हैं। सोशल मीडिया की बढ़ती पहुँच के कारण कविताएँ त्वरित गति से पाठकों तक भी पहुँचने लगी हैं। कविता अपनी समूची सीमाएँ तोड़ती नजर आ रही हैं और संकुचित वादों और वाद-विवादों के दायरे से बाहर आ जीवन और जगत के हर पल, हर पक्ष और दिशा को स्वयं में समेटती हुई नई परिभाषाएँ गढ़ने लगी है। मानव के लिए मित्रगत स्वरूप ग्रहण करने के लिए कविता का सहजता और संप्रेषणीयता के प्रति भी रुझान स्पष्ट हो चला है। कविता ने, चाहे वह गीत हो या ग़ज़ल हो या फिर छंदमुक्त लयबद्ध कविता, सशक्त रूप से हर अन्याय, अत्याचार, उत्पीड़न, अमानवीयता, शोषण और दरिंदगी पर सार्थक वार और प्रहार करने की क्षमता सृजित कर ली है। यह हर कहीं एक अनोखी चेतना के रूप में अपनी उपस्थिति दर्ज करा रही

है। कविता कहीं भी चुप नहीं रहती, वह हर अतार्किक और दकियानूसी अँधेरों को भेद कर एक नई इबारत कहने लगी है। ग़ज़ल को हिंदी ग़ज़लकारों ने, जिनमें महिला ग़ज़लकारों की संख्या भी कम नहीं है, एक नया रूप दिया है। हिंदी ग़ज़लकारों ने ग़ज़ल को इश्क और माशूकी तथा सुरा और सुंदरी के सुनहरे और विलासी जाल से मुक्त कर एक नए अवतार में सुशोभित कर उसे आम आदमी के दुःख-सुख का स्वाभाविक साथी बना दिया है। आज हिंदी ग़ज़ल पूरी कायनात का कतरा-कतरा टटोलती ऐसे अर्श पर है जिसे कोई भी हाथ बढ़ा कर छू सकता है।

इन सबके बावजूद यह विडंबना है कि जब यह कहा जाता है कि आज कविता पढ़ता कौन है, इस पर भी कविता मौन नहीं रहती। जैसी कविता लिखी जा रही है और जैसी कविता कही जा रही है उससे परिलक्षित होता है कि कविता ने आम आदमी की ज़ुबान को, उसकी समस्याओं और सरोकारों को स्वयं में आत्मसात कर लिया है और जहाँ कहीं जीवन की गरिमा को ठेस पहुँचाने का प्रयास होता है वह सकारात्मक मुठभेड़ के लिए सक्रिय हो जाती है।

कविता ने एक और मोर्चा भी संभाल लिया है। देखा जा रहा है कि कम-से-कम महानगरों में बल्कि छोटे शहरों में भी कवि गोष्ठियों, कवि सम्मेलनों की भरमार हो गई है जो कि स्वयं में एक शुभ लक्षण है। आपूर्ति और माँग का सिद्धांत यहाँ भी लागू होता है; अगर कविता पढ़ने और सुनने वाले न होते, तो वह इतनी मात्रा में कैसे लिखी जाती, घर-घर और हर सप्ताह, हर माह कवि गोष्ठियाँ न होतीं। इसके साथ ही एक और उपलब्धि की ओर ध्यान दिलाना भी जरूरी है : कविता के क्षेत्र में बढ़ती महिला कवियों के योगदान को कम कर के नहीं आँका जा सकता। अनेक महिला कवि सदियों से इस उपेक्षित वर्ग की कथा-व्यथा को, उनके दमन, शोषण और उत्पीड़न को और महिला विमर्श जैसे विराट विषय को धारदार प्रामाणिक स्वर दे रही हैं और कवि गोष्ठियों और सोशल मीडिया में उनकी रचनात्मक भागीदारी उत्तरोत्तर बढ़ती जा रही है। इधर कई महिला कवि अच्छे गीत और ग़ज़लें लिख कर शानदार और जानदार काव्य प्रस्तुति से अपना एक नया मकाम गढ़ रही हैं। यह दूसरी बात है कि कविता के क्षेत्र में लोहा मनवाने वाली कुछ ही महिला कवियों का उल्लेख किया जाता है। मैं यहाँ उन लोहा मनवाने वाले पुरुष कवियों और महिला कवियों का नामोल्लेख नहीं करूँगी क्योंकि उससे अनेक नाम छूट जाने की संभावना बनी

रहती है। अधिकांश पुरुष तथा महिला कवि जो अपना लोहा नहीं मनवा पा रहे या उनकी अकादमिक जगत में उपस्थिति दर्ज नहीं है, इसका यह अर्थ नहीं है कि वह कविता के मंच पर उपस्थित नहीं हैं। अकादमिक क्षेत्र में दर्ज होने के कुछ अपने ही प्रतिमान, पैमाने और प्रयत्न होते हैं। यह भी सब जानते हैं कि भारत में बहुत समय से एक विचारधारा विशेष का ही वर्चस्व बना रहा और उन्हें ही प्रायः अकादमिक जगत में प्रवेश मिलता रहा; परंतु कविता का पैमाना केवल और केवल एक होना चाहिए मानवता और मानव हितकारी होना, क्योंकि कविता केवल शब्दों की बौद्धिक जुगाली नहीं हो सकती, उसे सत्यम्, शिवम् और सुंदरम् की प्रस्तर शिला पर आलोकित होना होता है। कहा भी है कि कविता मानवीय चेतना को ऊर्ध्व धरातल पर प्रतिष्ठापित करने का ऐसा अचूक साधन है जिससे विश्वसनीय, प्रेरक एवं प्रमाणित मानव मूल्यों का सृजन संभव है। आज हमारे चारों ओर काव्य संग्रहों, सोशल मीडिया पर या ई-पत्रिकाओं में, साहित्यपीडिया जैसी सोशल साइटों पर अथवा कवि गोष्ठियों आदि में जो लोग कवि कर्म को अपनाए हुए हैं, कविता के क्षेत्र में उनके योगदान को रेखांकित किए बिना काव्य साहित्य की कथा को पूरा नहीं समझा जा सकता।

इसका यह अर्थ नहीं है कि आज कविता लिखने के लिए स्थितियाँ अत्यंत अनुकूल हैं। कहीं भी मानव-विरोधी स्थितियाँ होती हैं तो हर व्यक्ति विशेष रूप से कवि अवश्य उद्वेलित होता है और आज के इस समय में क्यों कोई उद्वेलित नहीं होगा जबकि 21वीं शती के साथ ही, बल्कि उससे पहले ही सोवियत रूस के विघटन के साथ ही भूमंडलीकरण की धमक समूचे विश्व में पसर रही थी। अब तक सब ओर आर्थिक विकास के पुराने सभी मॉडल पूरी तरह ध्वस्त हो चुके हैं, सब ओर पूँजीवाद, उदारीकरण और बाजार हावी हो रहा है। पूँजीवादी युग में भौतिकता की सुख-सुविधाएँ तो चरम पर पहुँच जाती हैं किंतु उसका कदापि अर्थ नहीं कि विश्व में स्वर्ग का पदार्पण हो गया है। पूँजीवाद में पूँजी का उत्कर्ष तो होता है परंतु ऐसी मानव और मानवता विरोधी शक्तियों का प्रादुर्भाव इतने बड़े पैमाने पर होता है कि केवल उपभोक्तावाद, बाजार और भ्रष्टाचार के अलावा कुछ नहीं बचता। इसमें सबसे पहले बलि चढ़ते हैं मानव मूल्य और परस्पर पारिवारिक रिश्ते। मानव मानव नहीं रहता, रहते हैं तो केवल अस्वाभाविक आकांक्षाओं और महत्त्वाकांक्षाओं के बवंडर, जिसमें फँस कर आदमी की औकात बिकाऊ माल अथवा उपभोक्ता से अधिक नहीं होती। असमानता और गैर-बराबरी

का दंश लोगों को अपने ही देश और परिवेश से गरिमाहीन और अस्तित्वहीन बना कर रख देता है। देश में बढ़ती अत्यधिक जनसंख्या से गरीबी, बेरोजगारी आदि के कारण भी आम आदमी विस्थापन और अपनी जड़ों से उखड़ा होने की क्रूर स्थितियों को झेलने के लिए अभिशप्त हो जाता है। अधिकांश लोग ग्रामीण परिवेश को छोड़ महानगरों के कृत्रिम रोमानी वातावरण में आकर जीवन को बेहतर बनाना चाहते हैं परंतु यहाँ उनका जिन स्थितियों से सामना होता है वह नरक से कम भयावह नहीं होती। तेजी से बदलते परिवेश में सामाजिक और आर्थिक यथार्थ के संदर्भ में आज की वास्तविक स्थितियाँ सबके लिए अधिक जटिल एवं नृशंस बन गई हैं।

सूचना प्रौद्योगिकी और ई-मीडिया से सत्य तथा सूचनाओं के सुलभ होने के कारण कवि की चेतना भी गहरी होती जा रही है जिससे कवि की समझ और उसके काव्य का दायरा भी व्यापक हो रहा है।

इसके साथ ही उसकी बदलते उत्पादन संबंधों, सामाजिक संबंधों और सारभूत यथार्थ की पहचान भी गहरी हो रही है। ऐसे में आज की कविता भौतिकवाद की तथाकथित स्वर्णिम स्थितियों और अपसंस्कृति की कुरुपताओं का महिमामंडन करने नहीं बैठ सकती। कविता उस आम आदमी का नेतृत्व करती है जो हाशिये पर है। वह आम आदमी को बेहाल कर देने वाली समस्याओं के समाधान की खोज में निकल पड़ती है। वह मानवीय व्यक्तित्व को कुंद कर देने वाली शक्तियों से लोहा लेने के लिए उठ खड़ी होती है और मनुष्य की दुप्रवृत्तियों को नेस्तनाबूद कर हर मोर्चे पर संघर्ष के लिए सक्रिय हो जाती है। कहा भी गया है --

लड़ लिए कितने ही कुरुक्षेत्र
नहीं चुकती उसकी जिजीविषा
कौन है यह सतत सेनानी
हो सकती केवल यह कविता।

❑

वंदना

ओ सृजन की देवी शारदे
मेरे गीतों को सँवार दे।

ज्ञान का भंडार है तू
भाव का संसार है तू
शब्द का आगार है तू
गान की सुरताल को तू
मेरे गीतों में उतार दे
ओ सृजन की देवी शारदे...

कल्पना को धार दे दे
व्यंजना को तार दे दे
काव्य को अलंकार दे दे
सात सुर के साज को तू
मेरे गीतों में उतार दे
ओ सृजन की देवी शारदे...

मंत्र हो जाएँ शब्द मेरे
भाव हो जाएँ घनेरे
बिंब चमके बन चितेरे
वेदना की अनकही टीस
मेरे गीतों में उतार दे।
ओ सृजन की देवी शारदे
मेरे गीतों को सँवार दे।

❑❑❑

कुछ नया रच

कुछ नया कह
कुछ नया रच

कुछ और उठ
कुछ और चल
कुछ और लुट
कुछ और जुट
कुछ और खप
कुछ और तप
कुछ और जच
कुछ नया कह
कुछ नया रच।

बातों का ढंग
भावों का रंग
शब्दों के संग
सुर का संगम
कुछ और कर
कुछ और ज़र
कुछ और तप
कुछ नया कह
कुछ नया रच।

कुछ और सुन
कुछ नया चुन
कुछ नया गुन
कोई नई धुन
नहीं बुरा कह
नहीं बुरा सह
कुछ नया जप
कुछ नया कह
कुछ नया रच।

भाषा भोथर
लिजलिजे बिंब
न सबल भाव
सब विचार कुंद
सब छोड़ छाड़
कुछ नया भज
कोई नया सच
कुछ नया कह
कुछ नया रच।

मत और गिर
मत और फिर
मत और घिर
मत भाग भाग
अब जाग जाग
कुछ फाग आग
नूतन सूरज
कुछ और लख
कुछ नया कह
कुछ नया रच।

❑❑❑

कविता

हृदय के रास्ते
जब भी कविता
बादल-सी घुमड़ मचाती
अपनी सुध तब
किसे कहाँ रह जाती?
दौड़ पड़ती है क़लम
आँसू पोंछने
हर आँख का।

हर होंठ पर हास लाने
हर जख़्म पर मलहम लगाने
हर जीवन में गुलाब खिलाने
होती अँगुलियाँ लहू-लूहान।
अपनी झोली में दर्द को समेटे
ज्यों ही उठ खड़ी होती हूँ
जाने क्या होता है जादू
काले बादलों से
मुक्त हुए चाँद की उजास-सा
कोई पीछे से आ
हाथों से आँखें बंद कर
पूछता
बताओ कौन?
मेरा मौन
फूट पड़ता

शब्द में, लय में
ताल में, राग में
होने लगती साकार
कविता की शक्ल
जिसे मैं उतार देती
जीवन के फलक पर
और कहती हूँ कविता से
कविता! तुम सदा
मेरी आँख बन कर रहना
बाँटना दर्द सभी का
हताशा में दे दिलासा
टूट रही साँसों को
जीवन सुगंध कहना।

❑❑❑

शब्द

जब मैं शब्दों के बीच होती हूँ
अकेली नहीं होती
साथ चलता है समय
आकाश के संग धरती
इंद्रधनुषी हो जाती है
शब्द रिश्ते-नाते दोस्ती
सब निभाते हैं
शब्द कई-कई अवतारों में
उजाला भर जाते हैं।
शब्द अपनी संवेदना-सरोकारों में
करुणा बरसाते हैं
कभी-कभी अपनी भंगिमाओं से
दुःखी भी कर जाते हैं।
शब्द जब बन जाते प्रेरणा
मैं एकाएक उठ कर
चलने लगती हूँ अनवरत
नहीं आते तब नज़र
रास्ते के नुकीले पत्थर
झाड़-झंखाड़ कोई दीवार
कितनी ही हों ऊँची
पर्वतों की चोटियाँ
नहीं रुकते क़दम
मैं सब लाँघ जाती हूँ।

कामना यही है
बना रहे शब्द का साथ
हर साँस के साथ
जैसे सागर में उर्मि
जैसे बादल में जल
जैसे सुमनों में सुरभि
जैसे कान्हा की मुरली
शब्द ही ब्रह्म है
गंगा, यमुना, सरस्वती की तरह
संवेदना-कल्पना-सृजन का संगम
शब्द की सत्ता को नमन
शब्द की सत्ता को नमन।

❑❑❑

हाशिये पर कविता

मात्र शब्दों से खेलना
मुक्तक और छंद की कसीदाकारी
होती नहीं कविता
कामुक-सजी-धजी
अल्पवसना नारी
जैसे होती नहीं वनिता।
नायिका-भेद और शृंगार
हो सकता है
कविता का बाहरी लबादा
बन नहीं सकती वह
किसी घर या झोंपड़ी की मर्यादा
होगी किसी महल की
लिज़लिज़ी साज-सज्जा।
अध्यात्म के गलियारे में
आसमानी चाँद सितारों में
संभ्रांत चाँदनी-सी टहलती कविता
बेशक बिछते रहें उसके लिए
लाल-कालीन से पलक-पाँवड़
चाहे नंगे पैर ले जाते काँवड़
चाहे वह पढ़ी-पढ़ाई जाती रहे
शिक्षा के बड़े-बड़े सदनों में
कितने ही सिर क्यों न झुकते रहें
उसके क़दमों में।
यदि वह प्रलयकारी बाढ़ में

डूबतों को न बचाए
यदि कुपोषण के शिकार
नौनिहालों की दवा न बन पाए
बम-धमाकों में जख़्मी जीवन की
मलहम न बन पाए।
मानवता के नाते कभी
किसी के काम न आए
या फिर इंडिया और भारत को
एक न कर पाए
बेकार है वह कविता
धिक्कार है उन्हें
''हमें क्या?'' की मानसिकता से ग्रस्त
अपने में मस्त
निसंग जी रहे पाँव पसार
या फिर सोचे न कहें
''आम आदमी की त्रासदी'' का
कौन है ज़िम्मेदार?
आम आदमी ही क्यों होता त्रस्त
हर बार, बार-बार?
हाशिए से लौटने के लिए
अब कविता को बनना होगा
सचेत जिम्मेदार
करना होगा सब को सतर्क
होना होगा कविता को ख़बरदार।

❑❑❑

अभिव्यक्ति

समुद्र में घुमड़ता रेला
जिसका तीव्र वेग
फिसल-फिसल जाता
हाथ से बार-बार
जैसे रोशनी लौट जाए
देख कर बंद द्वार
किरणों के झुरमुट में
धूप ताँबे-सी तपती
अपाहिज अभिव्यक्ति
झुलसती बार-बार
टीसते दर्द का मर्ज़
बस है लाइलाज।
दिन और रात
बस एक ही यातना
तन और मन में
दरारें कर
मूक चीख़ बन
जैसे अंदर तक
चुभता नुकीला तीर हो
अथवा चलती मशीन में
फँसे हाथ में आ रहा चीर हो।
क्या यातना
गगन-सी विस्तृत
अंतहीन ही रहेगी

अपने दर्द का अहसास
किसी से नहीं कहेगी?
अथवा अभिव्यक्ति
कर देगी उसे विनम्र
जैसे पेड़ शाखाएँ फूटने से
नीचे की ओर झुकता है
पानी का प्रवाह
ढलान की ओर चलता है
आकाश पर कितना ही
ऊँचा हो भास्कर
किरणें तो धरती की गोद में
मुस्कराती हैं
करती है रोशन जग को
धरती में समा जाती हैं।

❑❑❑

मैं झीनी-सी बुनावट

प्रकाश के वितान की
मैं एक झीनी-सी बुनावट
मैं जुड़ जाना चाहती हूँ
हर व्यक्ति से
हर मौसम में
उसके दुःख में, उसके सुख में,
हर इनसान की
सुबह से
उसकी शाम से
रात की शीतलता
दुपहरी घाम से
आड़े वक़्त में मैं सबके
काम आना चाहती हूँ।
प्रकाश के वितान की
मैं एक झीनी-सी बुनावट।

मैं जुड़ जाना चाहती हूँ
रुकी हवा से, बहती बयार से
सूखी नदी से, बहती धार से
सूखे पर्वत से, हिम-शिखर से
बंजर ज़मीन से, हरावल धरा से
क्यों न सृष्टि का कोना-कोना
यह हाथ स्पर्श करें
क्यों न गगन का हर तारा

मन आँखों का हर्ष बने
मैं प्रकाश के वितान की
एक झीनी-सी बुनावट।

प्रकाश के वितान की
मैं एक झीनी-सी बुनावट
प्रस्फुटित हो बन जाना
चाहती हूँ एक तलहटी
जो अंकुरों को ओढ़ती है
वादियों को जोड़ती है
चढ़ता जहाँ जीवन परवान
सभ्यता-संस्कृति के विहग
जहाँ भरते निरंतर उड़ान
मैं टूटे पंखों की परवाज़
बन जाना चाहती हूँ
मैं हर भग्न-त्रस्त हृदय की
बन जाना चाहती लिखावट
प्रकाश के वितान की
मैं एक झीनी-सी बुनावट।।

❑❑❑

दामिनी अभी ज़िंदा है

दामिनी ज़िंदा है अभी
अगर वह मर गई होती
राष्ट्र को इस तरह
ज़िंदा न कर गई होती।
वह ज़िंदा है
मुझ में, तुझ में
धरती के अंगारों में
चाँद और सितारों में
आज के नौजवान की धड़कनों में
किरणों के चमकते किनारों में
रूह उस की घूम-घूम कर
कह रही है
उठो! जागो!
ग़फ़लतें त्यागो
नहीं सहो अब
आतंकी अत्याचार
ले आओ बदलाव अब
देश की बेटियों की
करो संभाल
रहना चाहते हो ज़िंदा
नहीं तो प्रलय का
एक ऐसा झोंका आएगा
नहीं बचेगा कुछ भी
न यह राज

न यह समाज
न यह सभ्यता
न यह सृष्टि
न यह इनसान
न भगवान्।

❑❑❑

आस्था

मंदिर, मस्ज़िद, मठों में
आज आदमी की आस्था
बढ़ती जा रही है
आदमी की आदमी में आस्था
घटती जा रही है
धर्म और जाति पर
आदमी को लड़ा दीजिए
वह लड़ेगा
मारेगा, मरेगा
कोई आदमी मर रहा हो
उसकी सहायता?
नहीं,
वह कभी नहीं करेगा।

❑❑❑

कब आओगे?

कहा तो था
तुमने कृष्ण
आऊँगा कलयुग में
कल्कि बन।
आतंकवाद का कंस
हो चुका बहुत निरंकुश
लीलता जा रहा
निरीह निर्दोष जीवन
उठ खड़े हुए हैं
कई-कई शकुनि
और दुर्योधन।

राजनीति की अनीति
चल रही अबाध
चुप हैं सभी
भीष्म पितामह, गुरु द्रोण
या हों धर्मराज
तुम्हीं ने बचाई थी
तब द्रौपदी की लाज
आज वह नहीं कहीं सुरक्षित
घर हो या बाहर
क्या पहुँची नहीं तुम तक
कोई भी आर्त आवाज़?
भारतखंड की अस्मिता

लगी है दाँव पर
मिटा देना चाहते
कौरव उसकी पहचान
लगता है अब हो चुकी
महाभारत की पृष्ठभूमि तैयार
अब तो आ जाओ कृष्ण
जनता का सारथी बन
अब तो आ जाओ कृष्ण।

❑❑❑

अंतरिक्ष

साक्षी है
दूरान्वेषी सयंत्र
विस्तृत होता जा रहा
अंतरिक्ष निरंतर
मेरे मन का आकाश
ज्यों-का-त्यों खड़ा
हैरान हूँ
क्यों नहीं होता बड़ा?

❑❑❑

यमुना, एक मरणासन्न नदी

कहाँ हो तुम कृष्ण?
गाए चराते थे
बाँसुरी बजाते थे
यमुना के किनारे
रास रचाते थे
बज उठते थे
सृष्टि के कण-कण में
संगीत के खंजीरे
वही तुम्हारी यमुना
हाँ, वही यमुना
बन गई है गंदा नाला
तोड़ रही है दम
सह रही है
आधुनिक सभ्यता का दमन
कालिया नाग प्रदूषण का
फैला रहा आतंक ।
आओ कृष्ण थाम लो
यमुना का दामन
नहीं तो
सरस्वती की तरह
हो जाएगी लुप्त
नहीं मिलेगी यमुना
न धरती पर
या धरती के भीतर

कहीं गुप्त।
नथना होगा कालिया नाग
बुझानी होगी भ्रष्टाचार की आग
सफ़ाई के नाम पर
चट कर जाते सारे प्रयास
अब जब तुम
पुनः आओगे
युमना को कहीं नहीं पाओगे
कहाँ बाँसुरी बजाओगे
बिना बाँसुरी के कृष्ण
कैसे कहलाओगे?

❑❑❑

याद तेरी अमलतास

आज तुम नहीं हो माँ
याद कितना आती हो
सूने पलों में मुझे
बच्चों-सा रुलाती हो।
कभी-कभी लगता
गोद में लोगी उठा
वैसे ही जैसे जब
तूने था मुझे
जन्म दिया।
चिर नींद में सोई तुम
मैंने तुझे दी आवाज़
रोया था तब दिल मेरा
मिला नहीं कोई जवाब।
आज तुम नहीं हो माँ
याद जब भी आती हो
दुलार के गुलाब
खिल उठते अचानक
मेरे आसपास
झुलसती लू के झोंकों में
दीवार बन
तपते तनावों में
तरुवर छाया-सी
याद तेरी अमलतास।
करती अब भी दूर

तन मन के ताप संताप
याद तेरी अमलतास।

❑❑❑

नीलकंठ

जन्म है उत्सव
मरण है निश्चित
इस खेल के अंतराल में
जीओ जी भर कर।

दुःख-सुख के
दो चषक मिलेंगे
चखना होगा
विष या अमृत
उलझोगे केवल अमृत से
हो सकता है
बन जाओ अमानुष
पर पक्का है
परदुःख का विष पी
बन सकते हो
शिव।।

❑❑❑

भारत मेरा महान्

जी हाँ!
तूफान की गति से भी तेज़
दौड़ती जा रही शताब्दी मेल
छोड़ती पीछे
गंदे बदबूदार प्लेटफार्म
और पटरी के दोनों ओर
सुरसा-सी फैलती
गंदी बस्तियाँ तमाम।
बसर होता जीवन जहाँ
कुलबुलाते कीड़ों की तरह।
छूटी गोली-सी भागती
जा रही शताब्दी मेल
वहीं से साथ हो लेती
एक दमघोटू दुर्गंध
करती विचलित और परेशान
उँघते-जागते सैलानियों की साँस
भर लेना चाहते जो फेफड़ों में
ताजी मंद-मंद बहती बयार
थाम लेना चाहते हाथों में
उगते सूर्य की किरणों का हार।
पर आँखों के आगे
फैल जाता एक वीभत्स नज़ारा
हर वय के स्त्री और पुरुष
वस्त्र उघाड़े उकड़ूँ बैठे
खुले में जगह जगह

करते मल त्याग।
मेरी बग़ल में बैठे
अबोध बालक के
चेहरे पर उभरता है एक सवाल...
क्यों नहीं जाते यह सब
अपने टॉयलेट-शौचघर?
उठती तनिक कुछ बेफिक्र भौंहे
और गिर जाती तत्काल
खाली कारतूस-सी
करती फिस्स आवाज़।
अबोध बालक का विस्फोटक सवाल
घूम आया गली गली
शहर-शहर, गाँव-गाँव
हर सड़क, हर गवाक्ष
घूम आया दिशा-दिशा
लौट आया पिटा-पिटा
मिला नहीं कहीं से भी
उस सवाल का जवाब।
सर्वशक्तिमान की सर्वोत्तम रचना
मानव है जिसका नाम
कहाँ है उसकी गरिमा
कहाँ उसका सम्मान?
रेल में अब बज रहा
मधुर धुन पर एक सुमधुर गान
"मेरा भारत महान्
सब देशों से न्यारा
मेरा भारत महान्
यह धरती ऋषि मुनियों की
बहती जहाँ पावन गंगा
है महान्, था सदा महान्
और रहेगा सदा महान्

मेरा भारत महान्।''
झूम रहा बालक
अब करता करताल
'क्या आपके पास है
बालक के सवाल का श्रीमान जवाब?'

❑❑❑

परिवर्तन

क्या खो दिया है हमने
क्या पा लिया है हमने
कितने कच्चे हैं हम
अपने हिसाब के
हीरों के बदले
ठीकरों का व्यापार
किया है हमने
साँसों को बस
सुविधाओं में घोल
जिया है हमने।
सुबह के उजाले
हम नींद में गँवाते हैं
अँधेरे ही अब हमें
अधिक रास आते हैं।
अमृत कलश की जगह
जहर के चषक
ही अधिक भाते हैं।।

❑❑❑

पायदान

तुम्हें ऐसे ही आगे
नहीं बढ़ाया गया
तुम तो पायदान हो
जब तक ज़रूरी होगा
तुम्हारे सहारे
चढ़ी जाएँगी सीढ़ियाँ
यही करती आई हैं पीढ़ियाँ।
ज़रूरत ख़त्म होते ही
फेंक दिया जाएगा पायदान
कबाड़ के पिछवाड़े
पहुँचा दिया जाएगा सीधा
महलों के गलियारे।
पायदान फ़ालतू चीज़
बन जाएगा
तब पछताएगा पायदान
जब रसातल में पहुँच जाएगा।

❑❑❑

गाड़ी

ऐसा क्यों होता है
किसी को हर बार
मिल जाता है मौका
किसी को कभी नहीं
जब कि क़ाबिलीयत में
वह आसमान पर सितारों-सा
चमचमाता है
पर सितारा हमेशा उसका
ग़र्दिश में कहलाता है।
'कुछ करो' 'किसी से मिलो'
'कहलवाओ या मिलवाओ'
कितनों ने ही कहा
मुझे तो हमेशा
यही लगता रहा
क़ाबिलीयत को
मिलेगा ही मौका
आख़िर कौन कब तक
सभी को छलेगा?
ख़ूबसूरत ख़्वाब के
इन्तज़ार में
बैठा रहा वह।
कई निकल गए आगे
कहलाने को क़ाबिल
इसी को कहते हैं

चलती का नाम गाड़ी
जो भागी चली जाती है
बिना पहिए, बिना पटरी,
सुपर फास्ट कहलाती है।

❑❑❑

हादसे

कैसे सहोगी माँ
तुम आज फिर
यह हादसे
अहिंसा के आँगन में
आज फिर
गाँधी हलाक हुए।
घुट रहा माहौल
ज़हरीली हवाओं-सा
निकल आए भेड़िए
अमानुषी कंदराओं से
शांति के मुकाम धर्म
बदहवास
कैसा यह उन्माद
संयम की हर सीमा
कर रहा पार
नहीं लगा पाई
कोई अंकुश
समझ, समाज या
सरकार।

❑❑❑

आम आदमी का नार्को टेस्ट

पुलिस ने नाकामियों के दवाब में
एक आम आदमी को धर दबोचा
कई तरह की जाँच में हो विफल
उसका नार्को टेस्ट करने का सोचा
कौन हो सकता है वह आम आदमी?
हो सकता है वह मोहन जोशी
या फिर अमन कुरैशी।
शायद वह कहीं नौकर था
या किसी कारख़ाने में वर्कर
जब उसको नार्को टेस्ट की
दवा पिलाई गई
किया नहीं था उसने कभी
किसी तरह का भी नशा जीवन भर
उसके रक्त में उस दवा का
बला का असर हुआ;
वह एकाएक उठ खड़ा हुआ
और उसका क़द उसे भी बड़ा हुआ
दर्द, रोष और जोश में वह तड़फड़ाया
"जाँच का यह क्या तरीक़ा है?
क्या इस देश में कहीं कुछ बचा सलीक़ा है?
तुम अभी भी उन्नीसवीं सदी में हो
जब रेलवे स्टेशनों पर
मुस्लिम पानी, हिंदू पानी की
लगाई जाती थी हाँक

तुम लगा रहे हो हाँक
इस्लामी आतंक, हिंदू आतंक
क्या आतंक की भी होती है
कोई जात?
तुम्हें जाँच का पहला उसूल ही
नहीं आता
तुम क़ानून को ही
बता कर धता
अपराधी को अपराधी नहीं
उसकी जाति बता रहे हो?
कौन-सा पहन रखा है
चश्मा तुमने,
तुम जाँच कम
मीडिया में ख़ुद को
अधिक सजा रहे हो?
तुम मुझसे क्या कहलवाना
चाहते हो
और अपने आकाओं के सामने
सर्खुरु होना चाहते हो।
बोलो, जो पूछना है पूछो
मैं सच-सच कहूँगा
सच के सिवा
कुछ नहीं कहूँगा।''
''बोलो, तुम्हारे पेट में
बम ब्लास्टों के कितने राज़ हैं?''
''मेरे पेट में बम ब्लास्ट के राज़ नहीं
भूख के मारे चूहे कूद रहे हैं
जो आत्महत्या के भाव से जूझ रहे हैं।
एक बम ब्लास्ट में
खो दिया था अपना एक जवान बेटा

कलेजे के अपने उस टुकड़े का
ग़म अभी कम नहीं हुआ
कि एक और बम ने लपेटा
पेट काट-काट कर
बचाए कुछ पैसे
लगाए थे शेयरों में
मंदी की डूब में
वह सब डूब गए
बेटी की शादी करने के
स्वप्न सब टूट गए।
कई महीनों से न तनखाह मिली
न मजूरी
कल तो नौकरी भी गई
कारख़ाने ने दिखा दी मजबूरी।
महँगाई ने मारा है इतना
न बच्चों को शिक्षा दे पा रहा हूँ
न उपका पेट भर पा रहा हूँ।
कुछ लोगों ने मुझ को
'बाहरी' बता
खोली करवा ली खाली
परिवार के साथ अब सड़क पर हूँ
कैसे बचा पाऊँगा इज़्ज़त
अपनी जवान बिटिया और
घरवाली की
कैसे रोक पाऊँगा
भुखमरी के कग़ार पर खड़े
बेटों को भीख़ माँगने से
या जुर्म की राह थामने से।
इधर पकड़ लाए हो
कह कर आतंकी मुझे

मैं आतंकी नहीं
आतंकी समय का
शिकार हूँ मेरे भाई
मैं अपराधी नहीं
सीधा-साधा आम आदमी हूँ
क्या मैं अपने देश के किसी कोने में
इ़ज़्ज़त के साथ जी सकता हूँ
क्या मैं अपने देश में
अपने देश को
अपना कह सकता हूँ?''

❑❑❑

इतिहास में औरतें

'इतिहासकार' लिख-लिख गए
मोटे-मोटे ग्रंथ
सुर्खियों में सदा रहे
पर आततायी महंत
नहीं दिखी किसी पन्ने में
नदारद रहीं इतिहास में औरतें
हर हाल में बाँझ रही
इतिहास की आयतें।

औरतों ने नहीं, इतिहास ने जने
राजे-महाराजे, ऋषि-मुनि
नायक-महानायक
धीरोदात्त-महागायक।
नहीं जानता इतिहास
औरतों का अंतरंग अस्तित्व
नहीं जानता इतिहास
औरतों का कोई व्यक्तित्व।
कविता-कहानियों की वीथियों में
वह खूब हँसी, खूब रोई
इतिहास के वन में शकुंतला-सा
जैसे त्याग गया हो दुष्यंत कोई।
विरह और प्रेम राग
खूब अलापे गए
नायिका-भेद के

कई-कई वेद बाँचे गए।
नहीं जानता कोई उनका अतीत
गणिकाएँ तो थीं
खूब सुना गया उनका देह संगीत।
नहीं मिलती औरतें
जिन्होंने खून, माँस-मज्जा से रचा
हर काल का इतिहास
इतिहास में सुने जा सकते हैं
निर्लज्ज अट्टहास।
नहीं जानता कोई
लछमी के पास कभी आती थी लक्ष्मी,
नहीं जानता कोई
सरस्वती के पास था वाचन का ढंग कोई
नहीं जानता कोई
घर की अन्नपूर्णा कभी पेट भर कर सोई?
नहीं जानता कोई
धन्नो या मन्नो का
घर में था अपना कोई कोना
चैन से कभी सो सके
क्या था उसका अपना कोई बिछौना।
साहित्य में ज़िंदा, इतिहास में नदारद,
इतिहास क्यों रहा अधूरा
क्यों नहीं शक्ल ले पाया
कभी किसी गाँव का घूरा।
क्यों नहीं दिया औरतों को
इतिहास ने कभी कंधा
औरत की झाँई से
भुजंग की तरह
क्या इतिहास भी हो जाता था अंधा।
कहीं नहीं है औरतें

इतिहास में;
जिक्र कहीं है भी
तो है उपहास में?
या केवल शृंगार में
कहीं नहीं हैं औरतें इतिहास में।
क्या औरतें नहीं थी
इतिहास कालखंड में ज़िंदा
क्यों नहीं होता
इतिहास शर्मिंदा।
कहीं नहीं है इतिहास में
औरतें।

❑❑❑

अधिकार

मत भरो
अपने घर
ऐसी दौलत से
हक़ है
जिस पर
दूसरों का।
कितना करती है
धरती कोशिश
छिपाने को
सारा जल
सागर में;
खींच लेता सूर्य
किरण रज्जुओं से
आकाश में जलद
लगा देते
जगह-जगह छबीले
बुझाने के लिए
प्यास सभी की
धरती पर बरस-बरस।

❑❑❑

कसौटी

धन्य है माँ
जो जनती है
फिर बनती है
पालनहार
अपनी सन्तान की।
नहीं रहता उसे भान
अपने दुःख और दर्द का
बच्चे की हर ज़रुरत
बन जाता उसका ईमान
ज़रा-सी भी नहीं कतराती
बच्चे का मल-मूत्र करती साफ़
बच्चे को सूखे पर सुला
ख़ुद गीले पर सो जाती
तभी तो समूचे विश्व में
वह महान् ममता कहलाती।

अस्पतालों में नाइटिंगेल
करती है साफ़
बीमारों की थूक
लहू-पीक
मल-मूत्र और देह
और सिस्टर कहलातीं।

गांधी ने सफ़ाई-अभियान में
लोगों के मल-मूत्र उठाए

और पदवी पा गए बापू की
और राष्ट्रपिता कहलाए।
जिन्होंने सदियों से सभी के
मल-मूत्र सिरों पर उठाए
क्यों नहीं वह महान् कहलाए?
हमेशा रखा गया
उन्हें अपनी ठोकर के नीचे
हमेशा वह 'अछूत' कहलाए?
उन्हें मारा गया, दुत्कारा गया
उनकी अस्मिता को
हमेशा नकारा गया।
क्या वह माँ से भी
नहीं है बड़े
जब तुम बैठे हो
क्यों वह बस रहेंगे खड़े?
माँ तो बस
अपने ही बच्चों का
मल-मूत्र करती साफ़
वह तो माँ से भी हैं पाक
दलित करते रहे साफ़
अमीर-ग़रीब छोटे-बड़े सब का
फिर भी वह कहलाते हैं
पतित
और माँ महान्
हमारी कसौटी का
क्या है यह प्रतिमान?

❑❑❑

अहम्

मेरा रोज़ एक नया जन्म होता है
यह गर्भ से निकलना नहीं
ख़ुद अपने आप को जनना होता है
मैं जो कल था वह नहीं हूँ आज
मैं जो हूँ आज, कल नहीं होगा वहीं
भविष्य संभावना-सा इतराता हर कहीं।
कल एक नई-नकोर चादर-सा
बिछ जाऊँगा धरती पर
आँखे लगी रहेंगी
उँचे अंबर पर
जहाँ हर पल होती है
एक नई जुबिंश
चाँद में, सितारों में
सूर्य के जलते अंगारों में।
अग्नि-गर्भा मैं
निर्धूम जलाता कलुष मैल
मैं मेहतर-सा करता साफ़
हर पाप
पुण्य का शलाका-पुरुष
अभेद्य महाशक्तिमान का
नित नया होता
शक्ति प्रतिमान।
पर मेरा कब होगा वह जन्म
जब मैं एकलव्य को

धनुर्विद्या सिखाऊँगा
नहीं माँगूगा उसका
दायाँ या बायाँ अँगूठा
हर एकलव्य को
अर्जुन बनाऊँगा
सब को मिलेगा
हस्तिनापुर का हक़
मैं महाभारत नहीं दोहराऊँगा
तभी ही सच्चे अर्थों में
महाशक्तिमान का
शक्तिपुँज कहलाऊँगा।
कब होगा मेरा वह जन्म?

❑❑❑

ख़बर

तड़फती धूप में
खाली खेतों की
फटी बिवाईयों पर
खड़ा है वह
आकाश पर नज़र गड़ाए
कहीं मेघों के घर से
कोई ख़बर तो आए।

थरथरा रहे पाँव
सीने में बेतरतीब
उछल रहा दिल
नहीं हो पाई रोपाई
धान कहाँ से आए?

कुनबे की भूख का जुगाड़?
ऊपर से क़र्ज़ की मार
कर रहे बेहाल लगातार
बनिया और सरकार।
टपका रही टेसू
घर की मेहरारी
मुँह बिचकाये बस
देती जा रही गारी।

घुलता जा रहा वह
पानी में नमक-सा

काँप-काँप जाए हिया
अनहोनी धमक-सा
हुआ वही जिसका डर था
आ गया संदेसा
कन्या के वर का।

हो गया रिश्ता हरजाई
तोड़ दी वेरी ने सगाई
कर नहीं पाया वह
खाली कनस्तरों से
दान-दहेज की भरपाई।

उधर ललवा भी
निकल गया
घर छोड़ अपने बच्चे और लुगाई
छिड़काव की दवा
बचा था एक रास्ता
वहीं वह गटगटा गया
तानी चादर और
लमलेट हो गया।

अब उठा रही है मेहरारी
पड़ोसी, पूरा गाँव
उठो! उठो!
करो बुवाई
भर गए हैं खेत
नदी नाले और नहरें
पर नहीं खोली आँख
सबसे बेख़बर
बन गया वह,
मात्र एक ख़बर।

❑❑❑

वह टाँकती बटन

कुछ ही दिनों में
पार कर जाएगी अस्सी
वह माँ जस्सी।
पर ख़त्म नहीं हुआ
अभी उसका खटना
झुक गया बदन
रुका नहीं जीवन
चर्खे-सा कतना
झुर्री-झुर्री हरेक अंग
कुनबे के लिए
कपड़ा फैक्टरी में
वह टाँकती बटन।
भरी जवानी में सिर का साईं
छोड़ गया था साथ
करके बच्चे अनाथ
फैक्टरी में खटते-खटते
हो गया था उसे तपेदिक
तब से ढोते-ढोते
ज़िदगी का भार
वह अब कर लेगी
अस्सी पार।
मोतियाबिंद पक कर
अब हो गया काला

पर वह कब कहाँ
कराए 'आपरेसन'?
'आपरेसन' कराएगी
तो छुट्टी हो जाएगी
वह कहाँ से
कुछ रुपल्ली पाएगी?
हमेशा की तरह उसे बनना है
बच्चों सहित बेवा बेटी का सहारा
जिसका शराबी पति
हो गया भगवान् को प्यारा।
वर्षों से टाँकते बटन
अब काँपते हाथ
हो गए अभ्यस्त
नज़र न रहने पर भी
वह टाँकती जाती
अंदाज से बटन।
आख़िर करवा ही लिया
एक कैंप में
उसने 'आपरेसन'
पर लौटी नहीं नज़र
हो गया था मोतियाबिंद
पक कर काला
बहती रहती अब आँख
जैसे गंदा नाला
ऊपर से सालता दर्द
हाय! लौट आती नज़र
वह टाँक लेती बटन
बनती बेवा बेटी का सहारा
पछतावे की मारी

जीवन से थकी-हारी
रह गई मात्र
एक हड्डियों का ढाँचा
फिर भी माँगती नहीं मौत
माँगती नज़र
टाँक सके फैक्टरी में
वह बटन
कुछ ही दिनों में
पार कर जाएगी अस्सी
वह माँ जस्सी।

❑❑❑

मैं

मैं?
किससे अलग?
किससे विलग?
सतत अस्तित्व की
अविरल धारा
कभी सलिला कभी
सागर का किनारा।

❑❑❑

सड़क

बिछ रही हैं सड़कें
हर सड़क को हर सड़क से
जोड़ने के लिए।
क्या जुड़ पाएँगी सड़कें
गाँव की छाँव से
गाँव की माँ से
गाँव के पेड़ से
गाँव की मेंड़ से
गाँव की चौपाल से
गाँव के दरो-दीवार से
किसान के खेत से।
नहीं करनी पड़ेंगी
किसान को आत्महत्याएँ
खींच लेंगी
उसे अपनी ओर
गलबहियाँ डाले
आम रास्ता बनाती हुई
या केवल देती रहेगी
भरी दुपहरी में
मात्र जल का आभास
जो हमेशा की तरह
बना रहेगा
सूखे हलक की प्यास।

❑❑❑

अब के साल

पहाड़ पर
अब के साल
बर्फ़ गिरेगी जब
पथरीले खंडहरों पर गिरेगी
रक्त-भीगे कंबलों पर गिरेगी।
नहीं मिलेगा स्पर्श
उसे नर्म दूब का
या छत पर फैली धूप का।
नहीं मिलेगा
उसे कोई ख़त
ख़ुशियों की बरात
या प्यार की सौगात का।
बर्फ़ उतरेगी जब
सीढ़ी-नुमा खेतों में
चूमने गेहूँ की बालियाँ
या बागों में लदी-फदी
फलों की डालियाँ
खौफज़दा माहौल में बर्फ़
हो जाएगी ग़र्क
पहाड़ के दो-फाड़ में
जैसै कोई बाघ
लील जाए मृगछौना
बैठा कहीं आड़ में।
अब के साल

नीचे आती बर्फ़
पिघल कर जब
जाएगी नदी-झरनों से मिलने
कल-कल संगीत नहीं
सुनाई देगी उसे चीख़
उस बच्ची की
माँ बाप जिसके
ध्वस्त मकान में दब
हमेशा के लिए सो गए
या फिर
सुनाई देंगे
दोहथड़ छाती पीटती
माँओं के हृदय-विदारक वैन
जिनके बच्चे स्कूल में
बम-विस्फोटों में चिंदी-चिंदी हो गए
उस परी-स्थान में
खिलने से पहले
मौत की नींद सो गए।
अब के साल
बर्फ़ की नहीं होगी मुलाक़ात
प्रेमी युगलों से
न झीलों के किनारे
न चिनारों के नीचे
न सजे-धजे शिकारों में
न किसी बगीचे में
फटी रह जाएँगी उसकी आँखें
देख गड्ढों में सड़ती
अधनंगी मुटियार लाशें
शर्म जिनकी ढकने
बर्फ़ आँचल-सी बिछ जाएगी

दरिंदगी का कहर देख
छाती उसकी फट जाएगी
कराह उसकी आसमान को भी रुलाएगी।
अब के साल बर्फ़
नहीं करेगी आकर्षित
सैलानी टोलियाँ
हीर-राँझा की जोड़ियाँ
फाग खेलती होलियाँ
अब की बार बर्फ़
दब कर रह जाएगी
अपने ही बोझ से
मातमी सफेद चादर-सी
सिसकती रहेगी
अनंत काल तक
उनके लिए
जिन्हें निगल गई
आतंकी सुलगती तपन
हुआ नहीं नसीब
जिन्हें न अर्थी न कफ़न
न दो गज ज़मीन
दफ़न के लिए।
अब के साल
पहाड़ पर
बर्फ़ गिरेगी जब
पथरीले खंडहरों पर गिरेगी
रक्त भीगे कंबलों पर गिरेगी।

❑❑❑

सागर में लहरें उठाता है कौन?

सागर में लहरें उठाता है कौन?

चाँद है वह या सागर का क्रंदन
या पूजा के लिए सागर का वंदन
लहरों का नर्तन माथे का चंदन
लहरों में मोती बनाता है कौन?
सागर में लहरें उठाता है कौन?

पगलाई लहरें दौड़ी आतीं किनारे
फूलों में जैसे खिल उठती बहारें
छूने को आतुर प्रेमिल किनारे
लहरों के पर्वत बनाता है कौन?
सागर में लहरें उठाता है कौन?

नीलांबर से कौन करता इशारे
नदियाँ भागी आतीं सागर किनारे
टेरते उन्हें जैसे लहरों के तारे
नदिया को सागर बनाता है कौन
सागर में लहरें उठाता है कौन?

❑❑❑

चिड़िया

उड़ती रहती है
पंख फड़फड़ाती
एक चिड़िया
मेरे मन के आकाश पर
मैं भीड़ भरे परिवेश में
सुन नहीं पाती
उसका नीरव स्वर।

कारों का अंतहीन काफ़िला
विषैले धुएँ से होता निर्मित
एक कसैला काला अंबर
दमघोंटू हालात में
आँक आती मेरी आँख
उन्नत प्रौद्योगिकी के
विस्मय विस्तारित नंबर
तिलिस्म-सा बुनते
कितने नए मॉडल
आ गए हैं सड़क पर
इनसान के वजूद को
बौना और ऊना करते
अंततः निगलते
जैसे विषधर।
चिड़िया फड़फड़ाती रहती
निरंतर, अविराम

सुबह, रात, दोपहर, शाम
देख लेती वह
भीख माँगता एक नन्हा हाथ
समुद्र-तल में छाया-चित्र-सा
आता है याद
संसद ने कर दिए पास
कई-कई मौलिक अधिकार
और भीख माँगना एक अपराध।

पता नहीं क्यों
गड़ा देती है चिड़िया
अपनी तीख़ी चोंच
मेरे अंतस के बीचोंबीच
ध्यान खींचने की प्रक्रिया में
खींच ही लेती मेरे प्राण।
झुर्रियों से लथपथ
एक पनीला चेहरा
झाँक-झाँक जाता
फटी-फटी सहमी नज़र।
कोठों की कैद में
मसला जा रहा
कच्ची कलियों का बचपन
पंचतारा होटलों में
ऊँची कीमतों पर बिकते
सजे-धजे बदन
घर का सुरक्षित घेरा
भक्षक बन जाता
प्रश्नों का विकराल रूप
डराता-धमकाता।

सड़कों पर बैंड-बाजे
पार्कों में गढ़े
महलनुमा भव्य ढाँचे
रच रहे तिलिस्म
राजसी विवाहों को मात देते
बंदनवार, साज शृंगार
तरह-तरह के भोज-मिष्ठान
शोरीला संगीत
थिरकते पाँव
दूल्हे राजा
लिवा ले जाते दुल्हनियाँ
तारों की छाँव।
उत्सव की उमंग में
गाती है चिड़िया
क्षितिज के पार
उड़ान भर आती है चिड़िया
ख़ुशी में पगलाई-सी
नृत्य की मुद्रा में
गोल-गोल
घूमती जाती है चिड़िया
पर यह क्या?
जूठी पत्तलों पर
झपटते कुत्तों के साथ
छीना-झपटी करते
भूखे बच्चों के हाथ।
थिरकती-थिरकती अवाक्
एकाएक थम जाती है चिड़िया।
गड़ाती है चोंच
टेंटों की रस्सी में
रस्सी काट नहीं पाती

टकराती मानव-बम-सी
महलनुमा ढाँचे से
गिरा नहीं पाती
हताश ख़ुद गिर जाती है चिड़िया
दर्द से बेहाल
लहूलुहान माथ...
चीं...चीं... चिल्लाती है चिड़िया
चारों तरफ़ घूम-घूम
चिल्लाती जाती है चिड़िया
कोई भी उसका स्वर
सुन नहीं पाता
क्या ऐसा ही संसार
बहरा नहीं कहलाता?

❑❑❑

मेरे बच्चे

खोद डाली हमने
तुम्हारे स्वप्नों की सारी ज़मीन
जगह-जगह बन गए
गहरे गड्ढों में रोज़ जा गिरते हो
जहाँ साँस रोके तुम करते इंतज़ार
कोई तो आएगा तुम्हें बचाने।

❑❑❑

कौन हूँ मैं?

यह जो दिखता है
चलता-फिरता भरा-पूरा शरीर
अनेक क्रियाओं का कर्ता
ज़मीन और आसमान
मिलाने का दम भरता।
जो देखता है आँख से
सुनता है कान से
उत्तर है मौन
कौन हूँ मैं?
क्या कभी जाना
या कभी पहचाना
यदि शरीर नहीं हूँ मैं
कौन हूँ मैं?
क्या मैं आत्मा हूँ
जो अजर है अमर है
अविनाशी
शरीर मरने पर
ज़िंदा रह जाती
पर कहाँ है जाती?
शरीर मरने के साथ
मरता है कौन?
कितने ही प्रश्न
उछल रहे हैं अंतरिक्ष में
कितने ही उत्तर
अब तक है मौन
कौन हूँ मैं?

❑❑❑

अपने से पहचान कर लो

अपने से पहचान कर लो

क्या किया जीवन में अब तक
दोगे धोखा खुद को कब तक
चल रही हैं साँसें जब तक
कुछ तो अच्छा काम कर लो
अपने से पहचान कर लो।

ढल गया सूरज तो अब तक
प्रारब्ध को रोओगे कब तक
जाग उठो सोओगे कब तक
आओ गगन के गान कर लो
अपने से पहचान कर लो।

क्या हुआ जाना जो सब को
क्या हुआ जाना न रब को
जाना नहीं साँसों के ढब को
अब तो शर संधान कर लो
अपने से पहचान कर लो।

❑❑❑

तलाश

अँधेरा भी रात भर
करता है इबादत
सहर होने की।
घास पर जमी शबनम
देती गवाही रात भर
उसके रोने की।

चाँद तारे चमक से
उसको रिझाते हैं बहुत
चैन नहीं पड़ता मगर
रत्ती भर भी रात भर
बस उजाले की तड़फ
हाथ उठा कर हर पहर
अँधेरा भी करता
इबादत रात भर
सहर होने की।

पूर्व से सुन साँकल स्वर
झट पौंछ लेता आँसुओं को
धो लेता मुँह से कालिमा
पहली किरण की आहट पर
सो जाता मुँह ढाँप कर
उजाले की आगोश में
चार पहर

फिर शुरू हो जाती
इबादत रात भर।
अँधेरा भी रात भर
करता है इबादत
सहर होने की।

❑❑❑

सच्चाई की जीत

उसने कहा सदा
सच्चाई की जीत होती है
कुछ अजीब-सा लगा
यहाँ तो रोज़ बेईमानी से प्रीत
दिखाई देती है
नहीं फटती धरती,
अंबर की छत टिकी
दिखाई देती है।
क्या अब लगेगी सेंध
बेईमानी के गढ़ में?
झूठ की दीवार
होगी ध्वस्त जड़ से?

❑❑❑

वर्षा में नदी

सुस्त-सी पड़ गई नदी
अचानक उठ खड़ी होती है
वर्षा में।
वर्षा में वह निकाल देना चाहती है
उसकी नस-नस में भरा गया जो ज़हर।
मुक्ति के रास्ते तलाशती नदी
योग युवती-सी मुद्राएँ बनाती
गोल गोल घूमती नृत्यांगना-सी
नृत्य में मग्न हो जाती है
कहीं ऊँचाई से कूद
छलाँगें लगाती
वेग से बढ़ती जाती है।
अगर उसे ज़्यादा
सताया गया होता है
अस्तित्त्व मिटाने की हद तक
शिव तांडव-सी हो जाती है
फिर नहीं देखती
किनारों के पेड़
उसे बाँधने के लिए बने पुल
किनारों पर बने
छोटे-बड़े मकान
अपने कुपित क्रोधित वेग में
लीलती जाती है
कहीं-कहीं अमर्यादित हो

घुस जाती
कहीं भी
जंगल, पहाड़,
शहर, गाँव
नहीं बचते
उसकी ज़द से
प्रतिशोधी नार-सी
नहीं करती मुआफ़
इनसान को भी
जो उस की रग-रग में
घोल देता ज़हर
वह भी कहर बरसाती है।
उतरने से पहले
वह फिर
साफ़-सुथरी हो जाती है।

❑❑❑

आईना

कहीं नहीं हूँ मैं
अपनी कविता में
नहीं है मेरा कोई सपना
या फिर कोई अपना
हैं तो बस आँसू
या फिर आहें
या फिर कराहें
जो किसी मासूम को
पीटे जाने पर
देती हैं सुनाई
या फिर बद्दुआएँ
भूखे पेट या अत्याचारों से
उपजी रुलाई
या फिर चीख़ें
मसली जाती कलियों की
फिर उन उजड़ी गलियों की
जहाँ नहीं पहुँचता कोई ज्ञान
न कोई स्वच्छता अभियान
अपराधी रहता निडर, निश्चिंत
पीड़ितों पर भेजी जाती
लानत-फ़लानत
कि उसकी देह का होगा
सब किया-धरा
ऐसे में शर्म कर लेती

आत्महत्या
समाज को तड़फड़ाते प्रश्नों के
कटघरे में करके खड़ा।
बस दिखाती है मेरी कविता
अव्यवस्था का ज़हर-भरा घोल
आने वाले उजालों की उम्मीद का
बजता ढोल
धरती है गोल
कहती है कविता
उसी की धुरी पर चलो
सूर्य है हमदर्द
उसके आगे प्रदूषण न खड़ा करो
प्रकृति है समुज्ज्वला
उसका अपमान मत करो
प्रकृति देती है
उससे लेने वाले बनो।

मेरी कविता के हाथ में है
एक आईना
दिखाती चलती है
अच्छा है या बुरा
संवेदन है या खुरदरा
कोई भी देखे
चाहे तो सँवार ले
उसमें अपना चेहरा।

❑❑❑

पुकार

मैंने तब पुकारा था तुम्हें
कि कब आओगे कृष्ण
नहीं जानती थी
तुम नहीं आ सकते थे
क्योंकि पुजारियों ने तुम्हें
बंद कर रखा है
सुंदर अलंकारों के साथ
महँगे प्रस्तर के भवनों में
पूरी आन-बान और शान के साथ।
ख़ुद ताला लगा कर
नदारद हैं कहीं।
तुम डर कर दुबके हो
कि एक कंस का मुकाबला
किया जा सकता है
पर यहाँ कितने ही कंस
हो रहे हैं तैयार
अपनी सेना, कारिंदों प्यादों के साथ
यह द्वापर नहीं कलियुग है
हर तरह के नापाम बमों के साथ
मानव ने ख़ुद ही तैयार कर लिए हैं
अपने विनाश के हथियार
नहीं छोड़ा
कर लिया उसने
प्रकृति का भी अपहरण

बेबस कर उसे
कर लिया उसका चीर-हरण
क्रोधोन्मत हो अब
प्रकृति फुत्कार रही है
कहीं उगलती है आग
ज्वालामुखी-सी
कहीं उड़ा रही अग-जग
प्रभंजन बन कर
कहीं डुबो रही
कस्बे, शहर, गाँव
ऊँचे ऊँचे भवन
सागर में प्रलय-सी।
तुम आओगे
उँगली पर गोवर्धन
उठाने से कुछ नहीं होगा
एक कंस के वध से
कुछ नहीं होगा
अब तो सब निशाने पर है
धर्म, सभ्यता, संस्कृति
निरीह मानव के प्राण
आकाश का अस्तित्व
पृथ्वी का हर आयाम।

❑❑❑

हनन

संविधान ने दिया है हमें हक़
गरिमा से जीवन जीने का
पर हो क्या रहा है रोज़
झुक जाता है रोज़ शर्म से
सिर मेरा, हमारा हम सब का
हमारे नेताओं के इस उस कर्म से
लेने को तो ले रहे मोटे वेतन गर्व से
नहीं चलने देते संसद बेशर्म ये
नहीं है इन्हें याद ग़रीबजन
ग़रीबी में सना रहे उनका जीवन
शर्म की बात इस से अधिक न कुछ और है
हमारी गरिमा के हनन का जारी दौर है।

❑❑❑

तूफान रुकने के बाद

तूफान रुकने के बाद
धूल
धरातल पर
जम जाती है
अब की बार भी
जम जाएगी
झोंपड़ों के धरातल पर।
बुहारोगे नहीं तो
आपके सिर तक
आएगी
आँखों में पड़
पुतलियों को
पहुँचा देगी रसातल
फेफड़ों में गड़
कर देगी बंद
ज़िंदगी के रास्ते
कीड़ों-मकोड़ों की भाँति
मरते रहेंगे
छिपकलियों के वास्ते।

❑❑❑

ज्योति पर्व

आप तो आसमान-सी अट्टालिकाओं पर
मोती दीप से दिवाली मना रहे हैं
देख नहीं सकते
कि गटरों के लोग
कैसे अँधेरा खा रहे हैं
दीवाली का त्यौहार
नेहमत बन आता है तुम्हारे लिए
तो कम इनके लिए भी नहीं
आपकी आतिशबाज़ी के बाद
बचे जले काग़ज़ के टुकड़े
पैकिंग और खाली मिठाईयों के डिब्बों
से भर जाते हैं
इनके भी मैले-कुचैले फटे झोले
ख़ुशी-ख़ुशी यह अपने गटरों में
लौट जाते हैं
बीवी-बच्चों को बताते हैं
दिवाली नेहमत है
बच्चे ढूँढते हैं
इन भरे झोलों में
कोई अधजली हवाई या
कोई बुझा हुआ बम्ब
जिस दिन उन्हें
कोई अनजला बम्ब
मिल जाएगा

समझ लीजिए उस दिन
हो जाएगी
दीवाली नेहमत उनके लिए।

❑❑❑

मज़दूर

मेहनत कर जो खाता है
वह मज़दूर कहलाता है
बहुत हैं जग में ऐसे भी
दूसरे का श्रम खाते हैं
पर श्रमवीर कहलाते हैं
मेहनत को कलंक लगाते हैं।

बदल डालो अब यह चलन
मेहनत होती है नेहमत
ख़ून-पसीना जो बहाता
वही अपने हक़ का खाता।
मेहनत कर जो खाता है
वह मज़दूर कहलाता है।

❑❑❑

मजबूरी

सुनसान हैं गलियाँ
मंदिर के गलियारों में
नंगे पाँव भिखारियों की तरह।
चुन रहे हैं बच्चे
कूड़े के ढेरों पर
जीर्ण-शीर्ण कपड़ों के चीथड़े
गंदे नंगे हाथों से
बन रहे शिकार
जीवन घातक रोगों के
पेट की आग करती मजबूर
फिर भी एक दम
निश्चिंत बच्चे
चिढ़ाते जलते सूर्य को।
फटे पुराने चिथड़ों में
एक छोटी लड़की
अचानक लगती है चिल्लाने
वैन के नीचे आए जख़्मी कुत्ते-सी
तड़फती है भूख़
पिछली सदी के कंबल में
ठंड में ठिठुरता एक बूढ़ा
ढकने की कोशिश में
और उघड़ता जाता
सुबह-सवेरे
कमेटी की गाड़ी आ जाती

उठा ले जाती
लावारिस उसकी देह।

❑❑❑

समझ

पुरुष वर्चस्व का विरोध करती
फिर भी पुरुष के लिए सजती-धजती
नहीं बिठा पाई तालमेल नारी
कथनी और करनी में अंतर करती
अच्छा हो छोड़े अपने बुने जालों को
मुक्त हो पुरुष अपने अहं के परनालों से
नर और नारी, दोनों हैं कायनात पर भारी
धरती है तो अस्तित्व है गगन का
एक-दूसरे के बिना ज़िंदगी अधूरी
समझे नर नारी, एक-दूसरे का महत्त्व
एक-दूसरे के लिए जीने का हो प्रयत्न
जब ऐसी ही भावभूमि होगी तैयार
तब आएगा अवश्य नया बदलाव
बदलेगा हर व्यक्ति, परिवार और समाज।

❑❑❑

इनसान हैं हम

इनसान हैं हम
क्यों बन जाते हैं हैवान
इनसानों के प्रति
जिन्हें हमारी ही तरह
पैदा करता है भगवान
जिन की रगों में
दौड़ता है लहू लाल
मेरे इस वतन की मिट्टी से बना
मेरा यह वतन
उतना ही उनका है
जितना वह मेरा है।
उठाओ दर्पण
देखो-देखो ख़ुद को
सबका आकार एक-सा है
आत्मा एक-सी है
आस्था एक-सी है
यह धरती एक-सी है
एक-सा है आसमान
भगवान एक-सा है।
क्यों बन जाते हैं हैवान?

❑❑❑

चिलचिलाती गर्मी के बाद

चिलचिलाती गर्मी के बाद
भिगो गई वर्षा मूसलाधार
खुल गए झुलसे पात
खिल गया कुमलाया गुलाब।
खुल गई बंद दुर्गंधाती नालियाँ
प्रदूषित नदियों की खुली बंद जालियाँ।
आओ, मैं और तुम
ओ मेरी चिर-प्यासी आत्मा
आओ, भीग लें हम
भीतर तक मन बदन
मैं मैं न रहूँ
हो जाएँ हम
द्वेष से दूर
आत्मा में सम।

❑❑❑

अमरता

जब नहीं होंगे हम
तब यहीं होंगे हम।

नन्हें नन्हें सपनों में
बढ़ते हुए बचपन में
फूलों के हास जब
सुगंध को बिखेरेंगे
यौवन बलिष्ठ हाथों पर
भार वतन का ले लेंगे
हमारे कुछ प्रेरक स्वर
धीरे से आगे बढ़
गूँजेंगे धरती गगन
जब नहीं होंगे हम
तब यहीं होंगे हम।

समय की धारा पर
देश होगा जब शिखर
मेरे यह ज्योतित स्वर
लौट-लौट आएँगे
देश की गौरव-गाथा
नाच-नाच गाएँगे
ज्ञान के नवदीप तब
उन्हें पहचान जाएँगे
क़दम-क़दम ताल-ताल

करेंगे उन्हें नमन
जब नहीं होंगे हम।
तब यहीं होंगे हम।

❑❑❑

ओ मेरे मन

ओ मेरे मन
बन तू धरा-सम
आँधी, तूफ़ान, वर्षा या बाढ़
फिर भी खिलाती है फूल
काँटों की नोक पर झूल
ओ मेरे मन
बन तू धरा-सम।

नहीं करते छलनी
दुःख, संताप के शूल
वो दो पत्थर के बीच
उगा देती है बीज़
कितनी भी डालो धूल
रहती योगी-सी शांत
ओ मेरे मन,
तू बन धरा-सम
ओ मेरे मन।।

❑❑❑

पेड़

एक दिन तुम्हें
बोया था अवश्य
पर कभी नहीं सींचा
अपनी ही प्राण शक्ति से
तू होता रहा बड़ा
मैं हूँ वहीं का वहीं खड़ा।
कई बार तुम्हारे फैलाव को काटा
कई बार तुम्हारी टहनियों को छाँटा
पड़ोसियों ने तुम्हारे होने पर
मुझे कई कई बार डाँटा
पत्ते और फूल तुम्हारे
गिर जाते थे उनके आँगन
बुहारते हुए तू बनता रहा
उनका कोपभाजन।
स्थित प्रज्ञा-सा रहा तू खड़ा
बन कर सबका फेफड़ा
उनके हिस्से का कार्बन-ज़हर
शिव-सा हमेशा पिया
हम मुर्दों के बीच
केवल तू ही तो जिया।

❑❑❑

मेरा पेड़

तपती दुपहरी में
जलाता है सूर्य जब
हर इमारत, हर सड़क
तब भी खड़ा रहता अटल
मेरा पेड़ अचल एक ठाँव
देता अपनी सघन ठंडी छाँव
हर राहगीर, हर रेहड़ी वाले को।
नहीं देखता कभी
वह गोरे हैं या काले
शहरी हैं या गाँव वाले
नहीं पूछता कभी
कौन-सा है धर्म
कौन-सा है मज़हब
कौन-सा है कर्म
कौन-सी है जाति
मानता छोटे और बड़े को
वह अपनी संतान
विश्वास है मुझे
पढ़ लिया होगा
उसने मेरे भारत का संविधान।

❑❑❑

बेटियाँ

जब से बता दिया है उसे
नहीं है भेद
लड़का हो या लड़की
वह चहकने लगी है
स्कूल में, कॉलेज में
सेना में, कार्यालय में
ज्ञान के बड़े-बड़े प्राँगणों में
कार्य के बड़े-बड़े संस्थानों में
वह महकने लगी है
कविता में, कहानी में
नदी धारा की रवानी में
परिवार में, समाज में
राष्ट्र की अगवानी में
रचने लगी है इतिहास
देश के हर कोने से
आने लगी है आवाज़
बेटियाँ हमारा सब कुछ हैं
प्यार हैं, दुलार हैं
नींव हैं, आधार हैं
मान हैं, सम्मान हैं
तुलना अगर करनी हो कभी
वह भगवान्-सी भगवान् हैं।

❑❑❑

छू लूँगी मैं सूरज को

छू लूँगी मैं सूरज को
छू लूँगी मैं आकाश
अब मुझे मंजूर नहीं
कोई भी अंधकार
बहुत सह लिया अब तक मैंने
उत्पीड़न अत्याचार
अब तक देखे बंद दरवाज़े
और ऊँची दीवार
खोल अरगला आ गई बाहर
मिल रहे हिम्मतों के उपहार
राह बना रही मैं अपनी
रोक सकेगा न कोई सागर
और न कोई पहाड़
उचक-उचक कर
उछल-उछल कर
भर लूँगी बाँहों में अपनी
बना लूँगी माथे की टिकुली
सूरज का गोलाकार।

❑❑❑

स्त्री का वर्तमान

उदारीकरण ने बना दिया है
स्त्री को बहुत-बहुत उदार
हो गई है वह
अपने प्रति
बहुत सजग और समझदार
और सारा बाज़ार
नाचने लगा है उसके ईशारों पर
देह के नए-नए अवतार
सजने-सँवारने के नए-नए
हार-सिंगार
अब त्यौहार, धर्म और समाज के कम
देह के अधिक बन गए हैं औज़ार।
करवाचौथ हो या नवराते
उसकी देह को हैं
बहुत बहुत भाते।
कहाँ है उसका मन?
उसकी आस्था और संवेदन?
स्त्री का संघर्ष
क्या था इसी विमर्श के लिए?
बन जाओ फैशन दुकान के लिए।
अपने अंदर उतरो तुम
सँवारो अपना अंतर्तम
तुम ख़ुद तो सँवरो
जन्मदात्री

तुम स्वयं जो समकक्ष भगवान के
सँवारों अपनी संतान
सँवारों अपना वर्तमान
देह की नहीं
देश की बनो
आन-बान-शान।।

❑❑❑

स्त्री

शक्ति-रूपा मैं
सूर्य तक है पहुँच मेरी
बज रही है रणभेरी
अब न रुकेंगे क़दम
मिटने का नहीं है गम
उड़ रही हूँ गगन में
मथ दूँगी हर तरंग मैं
रोक सकेगा न शिखर
मैं ही हूँ शक्ति दुर्गा
असुरों का महाकाल
भूत, भविष्य और आज
सृष्टि के सिर की सरताज
मैं ही हूँ शक्ति-रूपा।

❑❑❑

सलोनी नार

पत्थरों के शहर
सुबह से शाम
धूप और घाम
लाद सिर पर
ईंट और गारा
चढ़ उतर रही
साँवली सलोनी नार
हो निडर रखती पाँव
लकड़ी की सीढ़ी
डगमगाते बाँस।

चीथड़ों में लिपटा
भूख से बेहाल
रोता शिशु
ज़ार-ज़ार
नन्हीं एक बालिका
आँसू भरे हाथों से
रही दुलार
भैया, चुप हो जा
लेने गई है माँ
तुम्हारे लिए
चंदा और आकाश।

❑❑❑

नारी मुक्ति

नारी मुक्ति की हूँ
प्रबल समर्थक
नारी विमर्श की
प्रबल पक्षधर
नारी उत्पीड़न देख
रक्त मेरा जलता है
शिराओं में लावा
विस्फोटक हो
उबलता है
धरती से गगन तक
सब फूँक डालने का
इरादा बनता है
पर अपने उत्पीड़न को
शहादत-सा मान
सह जाती हूँ
सलीब पर लटकाए
जाने पर
अजीब-सा सुख पाती हूँ
उन्मुक्त आकाश से अधिक
पिंजरे में सहज मन खिलता है
शायद यह मेरे संस्कारों की
दुर्बलता है।

❑❑❑

कवि

कवि के भीतर का कवि
सदा कहता है तू लिख
बाहर कैसा भी दिखे
भीतर बस कवि-सा दिख
तेरी वाणी सब की व्यथा
अपना सुख-दुःख भूल
सब के दर्द को तू लिख।

हो सकता है तुम्हें मिला हो
बस प्यार ही प्यार
होंगे ऐसे भी जिन्हें
मिला हो विरह विराग
मुड़ आए वापिस वह
पैदा करो लेखनी में
प्यार वाली खिच
सब के दर्द को तू लिख।
बाहर कैसे भी दिखे
भीतर कवि-सा दिख।
आँसू लिख, ओस लिख
अन्याय की चोट पर लिख
मनुष्यता स्थापित कर
किरणों की स्लेट पर लिख
क्रांति गाता हुआ लिख
प्रकाश फैलाता हुआ लिख

अन्न उगाता हुआ लिख
भुख़मरी मिटाता हुआ लिख।
बस लिख... लिख... लिख...
भीतर बस कवि-सा दिख।।

❑❑❑

ख़ुशी

छोटी-छोटी बातों से
मिल सकती हैं बड़ी-बड़ी ख़ुशियाँ
शर्त यह है
कि मन तैयार हो
ख़ुशी मनाने के लिए
नहीं तो
नहीं मिलती ख़ुशी
बड़ी-बड़ी बातों से भी
अगर मन
बीमार हो।
मन हो निर्मल
दर्पण-सा
शुभ कर्मों का डिटर्जेंट लगाए
ख़ुशी पाने का यह नायाब तरीक़ा अपनाए।

❑❑❑

शत-शत प्रणाम, ओ अंदेमान

लघुता में हो वामन-से
पर हिमालय से विशाल
मुख-मंडल पर भासित है
सहस्र सूर्यों की उजास
कल तक थे काला पानी
आज बने हो कैलाश
भारत माता की मुक्ति का
स्वप्न करने को साकार
कितने ही शिव यहाँ
पीते रहे विष वीतराग
ऐसे उन नीलकंठों के
नित चरण पखार-पखार
बना तुम्हारा काला जल धवल
ओ अनोखे पूजनीय पूजास्थल
खिल रहे हो हिंद सिंधु में
जैसे मानसरोवर में कमल।

पूजता है विश्व
शहीदों को आज तक
चढ़ गए जो सूली पर
बन मानवता के पक्षधर
साक्षी हो तुम्हीं
हज़ार-हज़ार देश-भक्त
लगा गए मौत को गले

यहाँ मातृभूमि का भविष्य
सुनिश्चित कर।
मिली है तुम्हें
सहस्र तीर्थों की गरिमा-पहचान
ओ अंदेमान
शत-शत प्रणाम
करता तुम्हें
सारा हिंदुस्तान।

बुलाओ मुझे भी
कर जाऊँ तुम्हारा वंदन
मस्तिष्क पर लगा लूँ मैं भी
तुम्हारी माटी का चंदन।
कर आचमन, कर लूँ
शीतल अपना अंतर्मन।
सदियाँ करेंगी तेरा गुणगान
शत-शत प्रणाम
ओ अंदेमान।

❑❑❑

कहर

बार-बार रहा काँप
धरा का धरातल
मच रहा है तांडव
तनाव और विनाश का।
चाँद-सितारों पर विजय रथ
दौड़ाने वाला
जल-थल-हवा में
विजय-दुदुंभि
बजाने वाला
नहीं रोक पा रहा
आज संहार।
कहीं जल का
निर्मम प्रवाह
बहा ले जाता
अनेक अपने प्रिय
कहीं धरती निगल रही
आशियाने
आसरा देने वाले घर
बन रहे क़ब्रिस्तान।
बस हो रहा संहार
निर्मित हो रहा
दर्द और ज़ख़्मों का संसार।
क्या कुपित हैं शिव?
खोल तीसरा नेत्र कर रहे संहार

नहीं कुछ कर पा रहा इनसान
बस बेबस लाचार।

❑❑❑

आत्मा का फूल

हो सकता है मैं गढ़ डालूँ
नाक, कान और देह
हो सकता है बना डालूँ मैं
ऊँचे-ऊँचे सुंदर गेह
हो सकता है भर डालूँ मैं
इंद्रधनुषी रंगों का नेह।

क्या हो जो, न कर पाऊँ मैं
सजीवता को सजीव।
हो सकता है इस सफ़र में
छूट जाए मुझसे कुछ मूल
फिर भी रहेगा अनुवाद इस जग में
अनुवादक की आत्मा का फूल।

❑❑❑

इतिहास

इतिहास दोहराता नहीं
ख़ुद को
हूबहू वहीं रहता है
सदियाँ बीत जाने पर भी
वही बातें कहते हैं।
वही शोषण का ढंग
नाम मुकाम बदल
वर्चस्व का दीनता को
हड़काने का वही क्रम
कुछ झूठे मुद्दे उठा कर
आम आदमी को वरगलाना
प्रार्थना पूजा के हवाले से
सीधी साफ़ फिज़ा को
ज़हरीली बनाना
मूर्ति-भंजन का उठा कर
प्रभंजन
कई-कई आस्था के पेड़ गिराना
कहाँ समझ पाता है
आम आदमी
ख़ून में उबाल ऐसे आता है
आम आदमी आम आदमी से
भिड़ जाता है
त्रासदी और विनाश के
मुहाने पर खड़ा

इतिहास व्यंग्य से
मुस्कराता है
कुछ नहीं बदलता
समय बीत जाने के बाद
इतिहास नहीं दोहराता
ख़ुद को
हूबहू वहीं रहता है
सदियाँ बीत जाने के बाद भी
वही बातें कहता है।
अगर इतिहास
कभी टटोलता ख़ुद को
कुछ तो बदल जाता।

❑❑❑

महाभियोग

विश्व के वैज्ञानिक
कर रहे एक महाप्रयोग
एक महामशीन में
पैदा कर के दवाब
वह जान लेना चाहते हैं
सृष्टि के पैदा होने का राज़
महाशक्ति बन रहा भारत
लाने जा रहा वह महाभियोग
वह भी जान लेना चाहता है
सर्वोच्च प्राचीर के पीछे के राज़
हो सकता है विश्व का
यह महाप्रयोग सफल हो जाए
हो सकता है इससे
दुनिया में प्रलय हो जाए
या फिर कोई नई रोशनी मिल जाए।
भारत में भी चलेगा महाभियोग
संसद चाहे कितनी कमेटियाँ बिठाए
अख़बार चाहे कितने सुर्ख़ हो जाए
यह महाभियोग है
विश्वास प्रस्ताव नहीं
जो पास हो जाए
चलेगा तो महाभियोग
पर मज़ाल है
किसी पर भी
ज़रा-सी भी आँच आए।

वह है विश्व का महाप्रयोग
यह है भारत का महाभियोग।

❑❑❑

जीवन चक्र

हम खड़े करते
रह गए
रहने के लिए मकान
जब बारी आई
रहने की
नहीं रह पाए
आ गया बुलावा
चलो तैयार है
तुम्हारी मचान।
फिर कहाँ
ला पटकेगा भगवान्?
नन्हें नए कपड़ों में
फिर शुरू होगा
जीवन का नया सफ़र
जीने के लिए
फिर खड़े करने होंगे
नए निर्माण
दिन और रात की तरह
चलता रहता है निरंतर चक्र
फँसा रहता है
उसमें इनसान।

❑❑❑

गाँधीवादी बनाम क्रांतिवादी

अब तक थी मैं गाँधीवादी
अब क्रांतिवादी हो जाना चाहती हूँ
अब तक मैं थी शांतिवादी
अब बंदूक उठाना चाहती हूँ।

बाज बन कर के कबूतर
उतर आए मुँडेरों पर
बाघों ने ओढ़े हिरण
हिरणों को खाते डेरों पर
नाग बन चुके कैंचुए
फूलों में डँसते हैं ज़हर
क़ानून बना है वेश्या
बेबस खड़ी न्याय तुला
बाजों, बाघों, नागों को
चौराहे पर कर के खड़ा
हंटर बरसाना चाहती हूँ
इन कमज़ोर हाथों में
बंदूक उठाना चाहती हूँ।

हो रहे ख़ुशहाल हाकिम
भ्रष्टाचार के कमाल से
भरते जा रहे तिजोरियाँ
बेबस के हक़ हलाल से
हड़प लिया अमृत सभी

जहर फेंकते बाज़ार में
पंगु-सा खड़ा लोकतंत्र
ज़ार ज़ार अपने बेहाल पर
बिल्कुल नहीं अब चलने दूँगी
न ही अब दलील न अपील
चौराहे पर कर के खड़ा
देशद्रोह, भ्रष्टाचार को
नेज़ों पर लटकाना चाहती हूँ
फाँसी पर लटकाना चाहती हूँ
अब अपने हाथों में
बंदूक उठाना चाहती हूँ।

आज़ादी की खुली हवा को
गटक जाना चाहते जो
शहीदों की कुर्बानियों को
बस भुनाना चाहते जो
दूसरों के हिस्से की हरियाली
महल सजाना चाहते जो
कोई भुख़मरी से मरे
गालों की लाली बढ़ाना चाहते जो
इनसानी माँस भक्षियों को
चौराहे पर कर के खड़ा
गोली से उड़ाना चाहती हूँ
अपने इन हाथों में
बंदूक उठाना चाहती हूँ
अब तक थी मैं गाँधीवादी
अब क्रांतिवादी हो जाना चाहती हूँ
मुआफ़ करें मुझे महात्मा
मैं बंदूक उठाना चाहती हूँ।

कोई इसे कह ले सनक
कोई इसे कह ले विप्लव
कोई मुझे समझे विक्षिप्त
कोई भी दे दो उपाधि
देश रोधी जनविरोधी भेड़ियों को
चौराहे पर कर के खड़ा
बम से उड़ाना चाहती हूँ
मुआफ़ करे गाँधी मुझे
मैं बंदूक उठाना चाहती हूँ।

अब तक थी मैं गाँधीवादी
अब क्रांतिवादी हो जाना चाहती हूँ
अब तक थी मैं गाँधीवादी
अब तक थी मैं शांतिवादी
अब क्राँतिवादी हो जाना चाहती हूँ।।

❑❑❑

सरहदें

आज फिर सरहद पर
तनाव है
चल रही हैं गोलियाँ
हो रहे हलाक रखवाले
सरहद के इस पार भी
सरहद के उस पार भी
छा रहा है मातम
रुला रहा है दर्दोग़म
सरहद के इस पार भी
सरहद के उस पार भी।

वह कौन-सी है शै
जो नहीं मिली इनसान को
निकल जाना चाहते
छाती पर हो सवार
जाने किस क़दर
क्यों बना दी गई
यह नामुराद सरहदें
किसने बाँट दिया
कर दिया छलनी
अपनी ही माँ का सीना
कभी जो थे ख़ास अपने
दुश्मन कहलाते हैं
सरहद के इस पार भी
सरहद के उस पार भी। ❑❑❑

स्लमडॉग?

स्लमडॉग ने जीत लिए
कई-कई ऑस्कर
ख़ुश हैं हम बहुत
अपनी इस पहचान पर।
बेशक हुए हम बेपर्दा
पर नहीं है शर्मिंदा
हस्ती मिटती नहीं हमारी
आधी सदी के बाद भी
स्लम अभी तक हैं ज़िंदा।
आज़ाद हैं आज
पशु-पक्षी, हवाएँ भी
पर ग़रीबी के पिंजरे में कैद
स्लम तड़पते परिंदे हैं।
तंग कुलबुलाती गलियाँ
न कहीं कोई खुलता द्वार
न कहीं कोई ताज़ा हवा की खिड़की
मिली ही नहीं कभी इन्हें रोशनी
नहीं चखा इन्होंने
आज़ादी का अभी तक आस्वाद।
देश की धरती पर रिसते यह फफोले
क्यों बन रहे माथे का ताज़
अब तक बदल चुके
कई-कई राज
टूटा नहीं सत्ता के सौदागरों का

अभी तक भ्रम
तभी तो अभी तक
कम हुए नहीं स्लम।
छू रहा बुलंदियाँ इंडिया
'भारत' के हिस्से में
हमेशा क्यों आते ग़म?

सत्ता के नए सूर्य
फिर जगमगाए हैं
खुल रहे नए द्वार
लगेगा सुख-सुविधाओं का अम्बार
पर नहीं सोचा जा रहा
न कोई एजेंडा
भाग्य इनका कैसे सुधारा जाएगा
कब आएगा
वह समय
जब इन्हें स्लमडॉग से नहीं पुकारा जाएगा।

❑❑❑

धुआँ ही धुआँ

हर बार
उठता है धुआँ
फटती है धरती
बनता है मौत का कुआँ
कभी इस देश में
कभी उस देश में
आज यहीं है बस धुएँ का बयाँ।
धुआँ अभी कल भी उठा था
ज़हर बन फैला था चारों ओर
जब छटा था धुआँ
नहीं फूटती रोशनी
मिलता है लाशों का अंबार
जख़्मों का सैलाब
हृदयों को चीरती चीख़ो-पुकार।
कब तक मिलेंगे धुएँ के मंज़र
कब तक घोंपे जाएँगे
धरती की छाती में खंजर
बेबस हुई मानवता
चलेगा आतंक आख़िर कब तक?
आतंक?
क्यों रास्ता नज़र नहीं आता
हैरान हैं लोग, हैरान हैं देश
अब धुएँ की लकीरों की
किरकिरी होनी चाहिए

अब देशों की तक़दीर
बदलनी चाहिए
उठो चले, अब
कोई नई तदबीर
निकलनी चाहिए
धुआँ नहीं,
रोशनी ही फैलनी
चाहिए।

❑❑❑

कृष्णावतार

तू ही तू की है पुकार
धरती और आकाश में
बज रहे हैं मन के तार
ढोलक की मीठी थाप पर
हो गया कृष्ण अवतार
गीत गा रही सितार
गोकुल के हर घाट पर
यमुना भी है उफ़ान पर
छू रही चरण बदन
पहुँच गए यशोदा लाल
गोकुल के गाँव में
हो गया कृष्णावतार...

❑❑❑

अनुवाद

नदी के भीतर
बहती एक नदी
उतनी ही गहरी
उतनी ही बड़ी
नदी के भीतर
बहती एक नदी।

उसके सब भाव
अनुभाव-विभाव
तनाव-खिंचाव
उसी के ही हैं
उसी के विचार
प्यार-मनुहार
शैली-शृंगार
उसी के ही हैं।
शब्द-परिधान में
होती साकार
कल्पना की लड़ी
नदी के भीतर
बहती एक नदी।

उसके दुःख-दर्द
आँसू, आहें सर्द
आँधियों की गर्द

उसी की ही है
लहरों के गीत
सरगम-संगीत
ग्रीष्म और शीत
उसी के ही हैं
रूप रस और गंध
बदले न कभी
समय की घड़ी
नदी के भीतर
बहती एक नदी।

बदलता बस इतना
भागीरथी या
हो अलकनंदा
बनती वह गंगा
स्वच्छ दर्पण की छवि
नदी के भीतर
बहती एक नदी

भीतरी नदी के
कई-कई सेतु हैं।
नहीं है सहज
यह सेतु निर्माण
नट का जैसे रस्सी पर चलना
तलवार की धार हाथ में पकड़ना
आग के दरिया से हो कर गुज़रना
सागर के गहरे में डूबना-उतरना
अभिव्यक्ति के ख़तरे
उठाते हैं सब
ख़तरों के डर से

रुका है कहो कौन कब?
सेतुओं का सिलसिला
रहता अनवरत
तभी तो बहती नदी
नदी के भीतर
बहती एक नदी।

❑❑❑

आँसू

कितनी बार कहा है आँखों को
मत रो बावरी!
रोना अगर दवा बन सकती
तो नहीं रोकती
भरने देती उन्हें आँसुओं के तालाब
आने देती आँसुओं के सैलाब
बेबसी और रोना
कहाँ बना है कभी किसी मर्ज़
और दर्द का इलाज?

❑❑❑

अग्नि-परीक्षा

आँखें हमेशा
आसमान पर लगी रहीं
या तो स्वप्न देखे
या दुआ माँगती रहीं
सब की ख़ुशहाली की
शामिल था जिसमें
परिवार और समाज
देश और विश्व विस्तार।
धँस रही हूँ दिन-ब-दिन
ज़मीन के अंदर
आँखें फिर भी बिछी हैं
आसमान पर
पैर लाँघ रहे हैं
काँटें, कंकड़, पहाड़
नहीं परवाह साँस फूलने की
हाथ-पैर झूल जाने की
आँखें टिकी रहेंगी
सदा आसमान पर
एक दिन फटेगी धरती
ले लेगी गोद में मुझे
कैसी थी सीता-सी
अग्नि परीक्षा यह
तारों से बात करने की
आसमान से आँख मिलाने की
ख़ुद आसमान हो जाने की। ❑❑❑

काव्यानुवाद : सुहाना सफर

दीप से दीप जलाना
प्राण से प्राण जगाना
प्रसव पीड़ा सह कर भी
सुख का अहसास कराना।

पथ में आए कितनी बाधाएँ
अर्थ की कितनी ही भंगिमाएँ
शब्द शक्तियों की अनुभूति ले
लय ताल सुर-सरगम गाएँ
छंद अलंकारों की सज्जा से
भीतर बाहर ख़ूब सजाएँ
अंतर-रूपांतर के पथ पर
आत्मा को, पर भूल न जाएँ
कविता की कविता में रचना
हो सकता है सफ़र सुहाना।
दीप से दीप जलाना।

❑❑❑

खुशी

बहुत दिनों के बाद
आज ख़ालिस ख़ुशी ने
डाला फेरा
उषा का आँचल
जैसे हो गया सुनहरा
पर्वत से आती छलकती
जैसे नदी की धार
तपते मौसम के बाद
जैसे सावन की फुहार
अमावस के अवसाद हो
जाए शुभ्र चाँदनी रात
कई बेटों के बाद
जैसे जन्मी हो एक बेटी
या वर्षों सूखे के बाद
भरपूर हुई हो खेती
थिरक उठा मन का हर अंग
सुर, ताल, लय का संगम
जैसे बच्चों ने गली में
खेल के लिए बनाया घेरा
बहुत दिनों के बाद
आज ख़ालिस ख़ुशी ने
डाला फेरा।।

❑❑❑

सोने से पहले

कभी ठहर कर
सोचने का
मन ही नहीं किया
कि जो अब तक जिया
क्या वह सचमुच जिया?
एक अनोखी धुन
सिर चढ़ बोलती रही
क़दम बढ़ते रहे
साँसें चाहे बीच-बीच में
डोलती रही।
जीवन की अब यह शाम
कब बन जाएगी मुक़ाम
नहीं पता?
फिर भी अनोखे अनगिनत सपने,
चिंताएँ, सरोकार
अपने लिए नहीं
परिवार और समाज के लिए
कर रहे इंतज़ार
पूरा होने के लिए।।
आँखें चाहती हैं देखना
देश को शिखर पर पहुँचते हुए
चाँद पर उतरे
कोई चाँद-सा बेटा
चाँदनी को धरती की गोद में

सौंपते हुए।
आज जो कूड़ा बीनते रत्न
आँखे चाहती हैं देखना उन्हें
रतन टाटा, अंबानी बनते हुए।
चाहती हूँ मेरे जीवन में ही
हो जाए ख़ुशहाल लोग इतने
न कोई भुख़मरी से मरे
न कोई किसी रोग से
न पर्यावरण के प्रकोप से
आतंकवाद और युद्ध
नेस्तनाबूद हो जाए
धरा पर विश्व शांति का
परचम लहराए।
फिर परवाह नहीं
यह जीवन रहे
या जाए
कर सकती हूँ इंतज़ार
लकड़ी चाहे चंदन की हो
चिता में सजने के लिए
या फिर गंगा की धार
अस्थि कलश के लिए
आँखों में सजे सपने
पूरे हो अपने
सोने से पहले।

❑❑❑

प्यार

आजकल अख़बार की सारी सुर्ख़ियाँ
रक्त से रंगने लगी है
सुबह चाय के प्याले से
बारूद गंध आने लगी है
जो मेरी नसों से होती
मानस में घुस
नफ़रत-बीज बोने लगी है
आज के हालात पर मुझे
कोफ़्त-सी होने लगी है।
सोच की आँख
इतिहास के झरोखे से
अतीत में झाँक
काले धब्बों के संदर्भ
सूक्ष्म यंत्र से जाँचती है
यह काले धब्बे
सदियों से बहाया
इनसानी सूखा रक्त है
जो कभी धर्म के नाम
बहाया गया या
नफ़रत की सुरा पीकर
हिंसा का तांडव
मचाया गया।
जख़्मों के तरह-तरह के
जंगल अब भी सजे हैं

और नए-नए जख़्म
उनमे दर्ज हो रहे हैं
इनसान को पसंद हैं
जख़्मों के अजायब घर
हो न जाए बंद कहीं
जख़्म देने के
नए-नए तरीक़े
करता है इज़ाद
भीड़ तंत्र में घुस
बहाता रक्त बार-बार।
चलता ही चला जा रहा
यह सिलसिला
कब होंगे बंद रक्तनद
टूटती जा रही
मानवीय आस्था।
एक ताजे हवा के
झोंके के लिए
तरस गया मन मेरा
क्या अमराइयों के द्वार खोल
झाँकेगा कोई
निरीह मानव के संतापों को
बाँचेगा कोई?
या घूमेगी मानवीय करुणा
गली-गली, द्वार-द्वार
देती अमर संदेश
मानव का मानव के प्रति
अटूट प्यार।

❑❑❑

सच

यह सच है
पत्थर की लकीर-सा
जब मिलती हैं सहस्र भुजाएँ
लहलहाने लगते हैं खेत
भर जाते अन्न के भंडार
नहीं रहता कोई भूखा पेट
शौर्य के शिखर होते तैयार
आँख उठा कर कभी नहीं
देख सकता कोई देश।

जब मिलते हैं उन्नत विचार
बाँध दी जाती है तब
उच्छृंखल जल की धार
अँधेरे के गर्भ से भी
खींच लाता है कोई उजास
चहकने लगते जीवन उदास
शांति और सद्भाव की
लिख ली जाती एक किताब
सदियों के लिए बनती मिसाल
आसमानी चाँद तारे
बन जाते एक नई धरा
हो जाता है उत्सुक इनसान
उगाने उन पर सुगंध भरे बाग।

पर जब भटक जाती हैं भुजाएँ
बढ़ने लगते हैं अपराध
अराजक हिंसा का होने लगता तांडव
उग आते काँटों के जंगल
वहशी क्रूर बर्बर आतंकवाद।

कैसे भुजाओं को भटकने से बचाए
कैसे विचारों को अमृत पिलाएँ
आओ सोचें विचारें
कैसे पर्यावरण को शुद्ध बनाएँ। ❑❑❑

हिंदी

विश्व में हिंदी गूँज रही अब
नहीं रुकी है नहीं रुकेगी
अंतरिक्ष में स्वर लहराते
राष्ट्र में भी धूम मचेगी
कितने भी रोड़े अटका लो
फिर भी हिंदी नहीं चुकेगी
हर हृदय का हार बनेगी
भारत का शृंगार बनेगी
रोटी का त्योहार बनेगी
हर हाथ रोज़गार बनेगी
विद्वान्-जन की शिव वाणी
आमजन की ज़ुबान बनेगी
हर जन की पहचान बनेगी
विश्व में अपना नाम करेगी। ❑❑❑

परचम

चारों तरफ घट रही घटनाएँ
कर रही अंदर-ही-अंदर परेशान
सोच-सोच कर थक जाता है मन
मिलता नहीं है कोई भी समाधान
सोचा लोकतंत्र को पुख़्ता बनाया जाए
निर्णायक हाथों में नेतृत्व थमाया जाए
पर क्या हुआ, नेतृत्व तो आया
अपने साथ अराजकता के दानव भी लाया
जो भस्मासुर-सा मिटा देना चाहता
हमारी रिवायते, हमारी सुख शांति
क्या कहीं हम पुनः खो रहे हैं रास्ते
बनाए गए हैं साँझे हम सब के वास्ते
आओ, मिल बैठ कर सोचें, समझें, विचारें
इस या उस विचारधारा के अहं में फँस
कहीं उलझे रास्ते पर ही न उलझ जाए
मानवता की ऊँची मीनार से ओझल न हो जाए।
सूर्य निकलने से पहले ही हम जाग जाए
सब मिल जुल कर रोशनी का परचम लहराए।

❑❑❑

आशा

हो सकता है
बहुत सारे लोगों के
बहुत सारे सपने
हो जाए पूरे
अँधेरा देखने की अभ्यस्त आँखे
नहीं देख पाती
प्राची से फूटती किरणों की उजास
नकार की सीमा रेखा में उलझ
भटकन नहीं जान पाती
दूर-दूर तक फैली किरणों की तपिश
निराश आस्थाओं का चमन
नहीं जान पाता
फूटती कोपलों का आग़ाज़
सागर में उठती लहरों को
छू लेती जब किरणें
तब शुरू हो जाता है बदलाव
बनने लगते हैं बादल
पहुँच जाते आकाश
झट बरस लेते हैं
बुझाते प्यासी धरा की प्यास।

❑❑❑

विस्तार

मेरे हृदय का हिमालय
बार बार उठ खड़ा होता है
वह फैल जाना चाहता है
निरंतर विस्तार पाते
गगन की तरह।
वह मिलना चाहता है
हर मन से, हर कण से,
जान सके वह
उस अनाम सत्ता को
जो सब का विधाता है।
कौन-सी है जंजीर
उसे चलने नहीं देती
कौन-सी सीमाएँ
उसे खुलने नहीं देती
जैसे खुलता है गुलाब
जैसे चमकता है चाँद
जैसे चलता है पवन
जैसे उगता है अरूण
फैलाता है अग जग
सुगंध चाँदनी शीतलता
और प्रकाश।

❑❑❑

अहम्

जब-जब सोचा
पा ली है विजय मैंने
अपने अहं पर
पता नहीं क्यों
ज़रा-सी-ठोकर लगने पर
फिर किसी गहराई से
फुफकार उठता है अहं
कितना भी दुतकारो
नाचता है बार बार
मन की आँखों के आगे
चिड़ाता है, सताता है
जानलेवा ताप-सा
चिंता के संताप-सा
कई बार तलवार-सा
हृदय में चुभ
जहर-सा फैल जाता है
अमृत का पात्र
फटकने नहीं देता पास
मन की अशांति का
उदधि बन जाता है
क्या कोई समझ सका
अहं की माया का आर-पार?
जो किसी संजीवनी की
नाव पर हो सवार
अहं को ले साध?

❑❑❑

हाइकू

सुंदर धरा
मुकुट में नगीना
प्रभु ने जड़ा।

करो सुरक्षा
बनो पहरेदार
हरी हो धरा।

वृक्ष छाया-सा
कर गया शीतल
नाम तुम्हारा

आओ ले चले,
एक नई डगर
नए नगर।

लगता रहे
बस देश का नारा
भारत प्यारा।

शब्द साधना
तापस-सा है कर्म
मन का मर्म।

आग की नदी
डूब के जाना पार
जीवन सार।

कवि रस
मन की मलहम
है मुक्ति कर्म।

सत्य का बाना
पहन सदा चल
न कभी छल।

विचार काया
फैलाओ पेड़-सी
घनी हो छाया।

सूर्य उदय
हो अँधेरी रात का
यही है दवा

साँझ सवेरे
दिल यह पुकारे
आ जा साँवरे।

अन्न व मन
आदमी का जीवन
सूर्य गगन।

❑❑❑

आज फिर

अब गा रहा है सागर
ख़ुशी के तराने
देख लिया है उसने
अर्श पर चमकते चाँद और सितारों को
लंबे सूखे के बाद पड़ती फुहारों को
मेरी आत्मा के सूर्य
मुस्कुराओ अब ख़ूब
पूरी की पूरी कायनात घूम रही है
अब तुम्हारी धुरी पर
इच्छाओं का बवंडर हो गया बेमानी
जीते जा चुके हैं सारे युद्ध
फैल चुकी है कण-कण में प्रशांति
और पाँवडे बिछाए
खड़ी है सृष्टि
पूरी की पूरी
संतप्त आत्माओं!
लौट लो अब
नफरत की भटकन की
उतार फेंको केंचुली
अब लौटना है जरूरी।

❑❑❑